

माधवी-कंकण

Price R. / 12 / =

LIBRARY
Kashmir

सूची :

No. ...
Received on ...

विषय	पृष्ठ
पहला परिच्छेद	
बालक और बालिका	१
दूसरा परिच्छेद	
चणुरज पीदार...	७
तीसरा परिच्छेद	
बाल वेधवा ...	१४
चौथा परिच्छेद	
यह बालिका किसकी है ? ...	१८
पाँचवाँ परिच्छेद	
...	२२
छठा परिच्छेद	
बेनी बालिका	३०
सातवाँ परिच्छेद	
में एकाकी	३६
आठवाँ परिच्छेद	
...	४०
नवाँ परिच्छेद	
...	४८
दसवाँ परिच्छेद	
का नयसिंह का शिविर ...	५४

विषय

	ग्यारहवाँ परिच्छेद	
जलेखा	...	५
	बारहवाँ परिच्छेद	
स्वप्न है या इन्द्रजाल ?	...	६३
	तेरहवाँ परिच्छेद	
गजपतिसिंह	...	७३
	चौदहवाँ परिच्छेद	
तातार-देश का पागल बालक	...	५
	पन्द्रहवाँ परिच्छेद	
राजा यशवन्तसिंह का शिविर	...	६
	सोलहवाँ परिच्छेद	
मुग़ल सेना का शिविर	...	१
	सत्रहवाँ परिच्छेद	
उज्जयिनी का युद्ध	...	...
	अठारहवाँ परिच्छेद	
चित्तौर	...	...
	उन्नीसवाँ परिच्छेद	
योधपुर	...	...
	बीसवाँ परिच्छेद	
उदयपुर	...	...
	इक्कीसवाँ परिच्छेद	
शारदी पूजा	...	१

य

(३४)

461
A155

पृष्ठ

एकलिंग महादेव का मन्दिर...	बाईसवाँ परिच्छेद	...	१३४
वर्त की गुफा...	तेईसवाँ परिच्छेद	...	१३६
त्रीणाधारिणी ...	चौबीसवाँ परिच्छेद	...	१४८
खड्गधारिणी ...	पच्चीसवाँ परिच्छेद	...	१५३
रयामनगर की लड़ाई	छब्बीसवाँ परिच्छेद	...	१६१
दर्पण में अपूर्व प्रतिबिम्ब	सत्ताइसवाँ परिच्छेद	...	१६५
प्रावृत्तस्नेह ...	अट्ठाइसवाँ परिच्छेद	...	१८२
१०४ एक पौराणिक कथा	उनतीसवाँ परिच्छेद	...	१८६
११२ तीर्थयात्रा ...	तीसवाँ परिच्छेद	...	१८८
११३ जलोखा का पत्र	इकतीसवाँ परिच्छेद	...	१८४
पत्र की समाप्ति	बत्तीसवाँ परिच्छेद	...	१८७
		...	२०२

विषय

तेतीसवाँ परिच्छेद

मथुरा ... २०८

चौतीसवाँ परिच्छेद

माधवी-कङ्कण का यमुना में विसर्जन ... २१५

पैंतीसवाँ परिच्छेद

उपसंहार ... २२२



माधवी-कङ्कण

—:०:—

पहला परिच्छेद

बालक और बालिका



गङ्गा के पश्चिम किनारे वीरनगर नाम का एक गाँव है। एक दिन सन्ध्या समय गरमी के मौसम में वीरनगर गाँव के दो बालक और एक बालिका तीनों मिल कर गङ्गा के किनारे बालू पर खेल रहे थे। सूर्यास्त होने का समय था। सन्ध्या की लालिमा धीरे धीरे चारों ओर फैल रही थी। गङ्गा के खच्छ जल में सन्ध्या-काल की रक्तप्रभा का प्रतिबिम्ब पड़ने से एक अपूर्व ही शोभा देख पड़ती थी। मानो गङ्गा को पति (समुद्र) से मिलने के लिए दौड़ी हुई जाते देख सन्ध्या ने उसे लाल रङ्ग की साड़ी पहना दी है। धार में कई एक जहाज़ इधर से उधर जा रहे हैं। दिन भर के परिश्रम से थके हुए नाविकगण रसोई बनाने की फ़िक्र में लगे हैं। जहाज़ की रौशनी नदी के चञ्चलप्रवाह पर पड़ कर नाच रही है। नदी के निकटवर्ती वीरनगर की अमराई क्रमशः अन्धकार से भरी जाती है। वृत्तों के अन्तर से कहीं कहीं चिराग़ की रौशनी देख पड़ती है और बीच बीच में रसोई आदि बनाने के विषय में

किसान की स्त्रियों की बातचीत करने का कोई कोई शब्द सुन पड़ता है । किसान लोग गाय बछड़ों को साथ लिये अपने अपने घर लौटे आ रहे हैं, गाँव की स्त्रियाँ जो पानी भरने के लिए गङ्गा-तट पर आई थीं, वे मुँह हाथ धो, कलसी में जल भर कर, सिर पर रख एक एक कर सभी चली गई हैं । गङ्गा का कछार लोगों से एकदम खाली पड़ गया है । केवल गङ्गा का प्रखर प्रवाह कलकल शब्द करता हुआ समुद्र से मिलने के लिए दौड़ा जा रहा है । गङ्गा के उस पार में बालू का मैदान और घना जंगल अधियारे में कुछ कुछ दिखलाई दे रहा है । दिन भर गरमी की शिद्दत से बेचैन होकर लोग साँझ को कुछ हरे भरे से दिखाई दे रहे हैं ।

ऐसे समय में वे दोनों बालक उस बालिका के साथ खेल रहे थे । बालिका नौ वर्ष की थी । नाम था हेमलता । उसका चाँद सा गोरा मुखड़ा देखने में बड़ा ही सुन्दर था । उसके मुँह पर जो चारों ओर काले केश बिखड़े पड़े थे वे उसके मुखमण्डल की शोभा को और भी अधिक बढ़ा रहे थे । उसका कोमल शरीर लावण्य से भरा था । वह चञ्चल बालिका गन्धर्वकन्या की भाँति सायंकाल में उन दोनों बालकों के साथ गङ्गा की बालुकाराशि पर खेल रही थी ।

बड़े लड़के का नाम रमेशचन्द्र था । उसकी उम्र तेरह वर्ष की थी । उसके चेहरे पर गम्भीरता और स्थिरता का भाव झलक रहा था । वह वास्तव में चतुर, शान्तस्वभाव और गम्भीर था ।

छोटे लड़के की उम्र ग्यारह वर्ष से ज्यादा न थी । उसे देख कर कोई यह न कहता कि वह हेमलता का सगा भाई नहीं है ? देखने में ठीक हेमलता ही सा सुन्दर था, पर स्वभाव उसका कुछ

तीव्र और उत्कट था । उग्र स्वभाव होने पर भी उसके चेहरे से तेज और पुरुषार्थ का भाव अवश्य व्यञ्जित हो रहा था ।

दोनों बालक बड़े परिश्रम से बालू का घर बना रहे थे । दोनों के जी में स्पर्धा बनी थी । दोनों खूबसूरत घर बनाने के पीछे हैरान थे । हेमलता देखेगी कि किसका घर अच्छा बना है । वह जिसके घर को सराहेगी उसी की जीत होगी । नरेन्द्र घर बनाने में बड़ा चतुर था, किन्तु स्वभाव का कुछ चञ्चल और उग्र था । हेम जब उसके पास खड़ी होती तब उसका घर अच्छा बन जाता था । नरेन्द्र चाहता था कि हेम बराबर उसके पास खड़ी रहे । यदि नरेन्द्र के मन में यह बात न थी तो वह हेम को रमेश का घर देखने के लिए जाते देख क्रोध क्यों करता ? किन्तु बालू का घर देर तक थोड़े ही ठहर सकता है ? नरेन्द्र ने दो तीन बार परिश्रम करके अच्छा घर बनाया, पर थोड़ी ही देर में वह गिर पड़ा । नरेन्द्र की बार बार की चेष्टा विफल हुई । वह भारी चिन्ता में पड़ गया ।

हेम इस बार रमेश का घर देखने न जायगी । सच जानो, वह कदापि न जायगी । नरेन्द्र एक बार तुम और घर बताओ । नरेन्द्र आँखों के आँसू पोछ कर फिर बड़े हर्ष से घर बनाने लगा ।

कुछ देर में घर तो बन गया पर कारीगरी का काम कुछ थोड़ा सा बच रहा था । हेम ने सोचा, नरेन्द्र की जीत तो आखिर होहीगी, किन्तु रमेश अकेला है, एक बार उसके पास न जाऊँगी तो वह क्या कहेगा ? यह सोच कर वह जलतरङ्ग की भाँति उछलती कूदती और केशराशियों को नचाती हुई रमेश के पास गई ।

रमेश का हाथ उतना पटु नहीं था । वह बालू का घर बनाना नहीं जानता था, तथापि अपनी बुद्धि के जोर से उसने किसी तरह एक प्रकार का घर बना लिया था, पर वह वैसा अच्छा न बना, जैसा बनना चाहिए था ।

नरेन्द्र एक बार घर बनाता था, और एक बार हेम की ओर देखता था, हेम को रमेश के पास खड़ी देख नरेन्द्र को क्रोध हो आया, उसके हाथ कांपते ही बना बनाया घर गिर गया । घर बेशक बढ़िया बना था, किन्तु जब गिर ही पड़ा तब उसकी फिर बात ही क्या ? नरेन्द्र ने क्रुद्ध होकर बालू ले हेम और रमेश की देह पर डाल दिया । जीत रमेश की हुई, क्योंकि उसने जैसा भी कुछ हो, एक घर बना तो लिया नरेन्द्र से तो एक भी घर न बना ।

नरेन्द्र, अभी से सावधान हो जाओ, आज तुम से एक बालू का घर न बन सका । देखो, अभी संसार का घर बसाना तुम्हारा बाकी ही है । जिसमें वह घर न बिगड़े ऐसा प्रयत्न करना । देखो, जिसमें रमेश तुम्हें चकमें में डाल तुम्हारा धन सम्पत्ति और हेम को अपना न ले ! नरेन्द्र सावधान !

नरेन्द्र की रोष से भरी बोली सुन कर गङ्गा के घाट से एक सत्रह वर्ष की विधवा स्त्री वहाँ आ पहुँची, वह रमेश की जेठी बहन थी । नाम था शैवलिनी ।

शैवलिनी ने वहाँ आकर अपने भाई को डाटा । रमेश ने धीरे धीरे कहा—“बहन, मैंने कुछ नहीं किया है, नरेन्द्र से बालू का घर नहीं बनता, इसीलिए वह रो रहा है । न विश्वास हो तो हेम

से पूछ लो ।” “उससे घर नहीं बनता तो मैं अपने हाथ से उसका घर बना दूँगी” इस तरह सान्त्वना देकर शैवलिनी चली गई ।

हेम और नरेन्द्र का झगड़ा शीघ्र मिट गया । हेम नरेन्द्र को रोते देख आँखों में आँसू भर कर बोली—“भैया, तुम क्यों रोते हो ? मैं एक बार रमेश का घर देखने गई थी, घर तो तुम्हारा ही अच्छा बना था । तुमने तोड़ा क्यों ? तुम्हारे पास तो मैं बहुत देर से थी । रमेश के पास एक बार सिर्फ़ घर देखने के लिए गई थी । इसके लिए तुम रिस क्यों करने लगे ? मैं तुम्हें रोते देखती हूँ तो न मालूम मेरी आँखों में आँसू क्यों भर आते हैं ?” नरेन्द्र का क्रोध ठंडा हुआ । नरेन्द्र क्या कभी हेम के ऊपर देर तक नाराज़ रह सकता है ?

पीछे उन दोनों में जो बातें हुईं उन्हें सुनिए । आकाश में जो इतने तारे निकल आये हैं, ये क्या हैं ? फूल हैं, या मोती के बड़े बड़े दाने बिखरे हैं ? नरेन्द्र यदि उनमें से किसी तरह एक भी पाता तो वह उसे लेकर क्या करता ? करता क्या ? उसे गूँथ कर हेम के गले में पहना देता । यह देखो, चन्द्रोदय होने के पहले अजब तरह की कैसी सफ़ेदी देख पड़ती है ? चाँद भी निकल आया । बतलाओ तो यह चाँद कहाँ से निकल आया है ? मैं समझती हूँ, यह धरती के नीचे से निकल आया है । यदि नदी के उस पार हम लोग किसी तरह जा सकते तो चन्द्रमा को हाथ से पकड़ लेते । नहीं, यह नहीं हो सकता । यदि ऐसा सम्भव होता तो जहाँ से चाँद निकलता है वहाँ के लोग उसे अब तक पकड़ लिये होते । हम लोग नाव पर चढ़ कर बहुत दूर चले जाते तो वहाँ पहुँच

जाते जहाँ से चन्द्रमा निकलता है, वहाँ के लोग कैसे होते हैं, यह देखने की इच्छा होती है । नरेन्द्र बड़ा होगा तो ज़रूर एक बार वहाँ जायगा । हेम, तुम भी उसके साथ जाना ।

हम इस अवसर पर इतना कह देना उचित समझते हैं कि इस संसार में कितने ही लोग इन बालक-बालिकाओं की भाँति गङ्गा की बालू के समान निःसार वस्तु को लेकर आपस में भगड़ते हैं और चन्द्रमा को हाथ से पकड़ने के लिए वृथा चेष्टा करते हैं । पाठकगण आप लोग विचार कर देखिए, इस संसाररूपी बृहत् नाट्यभवन में लोगों का कैसा समारोह है ? सब लोग अपने अपने उद्देश्य को लेकर किस प्रकार अस्तव्यस्त हो रहे हैं । कौन कह सकता है, सूत्रधार ने क्या सोच कर नाट्यलीला के लिए इतना बड़ा परदा खड़ा कर रक्खा है ?'

दूसरा परिच्छेद ।

चतुर ज़मींदार ।



वीरेन्द्रनाथ के पिता का नाम वीरेन्द्रनाथदत्त था । वे एक धनाढ्य और नामी ज़मींदार थे । उन्होंने गाँव में बड़े बड़े ऊँचे महल और अटारियाँ बनवा कर अपने नाम के अनुसार उस गाँव का नाम “वीरनगर” रखवा था । वीरेन्द्रनाथ का शील स्वभाव ऐसा अच्छा था कि सभी लोग उनका आदर करते थे, और उनके प्रबल प्रताप से डरते थे । बड़े बड़े जागीरदार पठान और स्वयं सूबेदार भी उन्हें आदर की दृष्टि से देखते थे ।

बाल्यकाल में वीरेन्द्र, नवकुमार नामक एक दरिद्र बालक के साथ एक ही पाठशाला में पढ़ता था । नवकुमार अत्यन्त सुशील और नम्र था । वह सर्वदा तेजस्वी वीरेन्द्र के वशवर्ती होकर रहता था । इसलिए वीरेन्द्र उसे हृदय से प्यार करने लग गया था । बालिग होने पर जब वीरेन्द्र ने ज़मींदारी का काम अपने हाथ में लिया, तब उन्होंने नवकुमार को बुला कर मन्त्री (दीवान) के पद पर नियुक्त किया । नवकुमार बड़ा ही बुद्धिमान और चतुर था, वह बड़ी योग्यता से ज़मींदारी का काम चलाने लगा । नवकुमार स्वार्थी होने पर भी एकदम नीच प्रकृति का मनुष्य न था । वीरेन्द्र से प्रार्थना करके उसने दो चार गाँव अपने नाम से लिखा लिये थे । भय से किंवा कृतज्ञतावश, नवकुमार वीरेन्द्र की ज़मीं-

दारी की किसी प्रकार की हानि नहीं करता था। वीरेन्द्र की मृत्यु के समय नरेन्द्र बहुत बच्चा था। वीरेन्द्र अपनी ज़मींदारी और पुत्र का भार नरेन्द्र के हाथ सौंप कर आप इस संसार से चल बसे।

प्रेम की गति भी बड़ी विचित्र है। वह सर्वदा एक सी नहीं रहती। माता-पिता का जितना प्रेम अपनी सन्ततियों पर होता है, उतना प्रायः सन्तानों का अपने माता-पिता पर नहीं होता। स्वार्थ-परता कृतज्ञता को धर दबाती है। लोभ दया को स्थिर नहीं रहने देता। नवकुमार की कृतज्ञता शीघ्र जाती रही।

नवकुमार यद्यपि एकबारगी अन्यायशील न थे, तथापि वे थे तो जन्म के दरिद्री। धीरे धीरे उनके हृदय में वीरेन्द्र की समस्त ज़मींदारी ले लेने का लालच बढ़ने लगा। वह लोभ उनका अनेक प्रकार से रोके भी न रुका। लोभ ने उनके चित्त को चञ्चल कर दिया। वीरेन्द्र का बेटा बहुत बच्चा था। वीरेन्द्र की स्त्री पहले ही मर चुकी थी। लड़के की सम्पत्ति की रक्षा करे, ऐसा परिवार में एक भी समीपी व्यक्ति न था, दो एक थे भी, वे नवकुमार से ही मिले थे। जो लोग वीरेन्द्र के अभिभावक थे उन लोगों ने इस विषय पर कुछ ध्यान न दिया; देही कर क्या करते ?

वीरेन्द्र की सारी ज़मींदारी नवकुमार ले लेंगे, पहले उनका ऐसा उद्देश्य न था। वीरेन्द्र की जीवित अवस्था में उन्होंने जो दो चार गाँव वीरेन्द्र से माँग कर ले लिये थे, उन्हीं को वे अपने लिए काफी समझते थे, किन्तु अब उनकी तृष्णा बढ़ चली, वे धीरे धीरे वीरेन्द्र की ज़मींदारी को हड़पने लगे। नवकुमार ने सोचा—“मेरे एक ही लड़की है, उसे नरेन्द्र के साथ व्याह

दूँगा। आखिर तो वीरेन्द्र की ज़मींदारी मेरे नाती ही की होगी। नाबालिग के नाम से ज़मींदारी रहने से पीछे गोलमाल हो सकता है। इस लिए अभी अपने नाम से ज़मींदारी का काम चलावे तो फिर किसी बात का सन्देह न रह जायगा।” इन सब बातों को भली भाँति सोच विचार कर नवकुमार अपने उद्देश्यसाधन में लगे। उस समय सूबेदार के दरबार में प्रधान प्रधान ज़मींदार और जागीरदारों की ओर से एक एक वकील रहा करता था। वे लोग अपने अपने मालिक की ओर से बीच बीच में उपहार आदि देकर सूबेदार को प्रसन्न रखते थे और मालिक का जो कुछ काम होता था, उसे तामील करते थे। सूबेदार के यहाँ निज का एक वकील न रहने से ज़मींदारों का विशेष अनिष्ट होने की सम्भावना थी। बल्कि ज़मींदारी छिन जाने का भय बना रहता था।

वीरेन्द्र के ज़मींदार का वकील इस समय नवकुमार से वेतन पाता था। उसने वङ्ग देश के कानूनगो से निवेदन किया कि जब से “वीरेन्द्रनाथ की मृत्यु हुई है तब से उनकी ज़मींदारी का खज़ाना नियमित रूप से नहीं आता। वीरेन्द्र का एक नवकुमार नामक कर्मचारी उस ज़मींदारी का भार अपने ऊपर ले अपने घर से समय समय पर खज़ाना दाखिल करते हैं। वही इस समय वीरेन्द्र के समस्त परिवारों का भरण पोषण करते हैं और वही उनके सबसे बड़ कर आत्मीय हैं।” इस निवेदन के साथ वकील ने कानूनगो महाशय को पाँच हजार रुपया घूस दिया। इस निवेदन के विरुद्ध कोई बोलने वाला न था, उसी घड़ी वीरेन्द्र का नाम खारिज करके नवकुमार का नाम ज़मींदारी

सरिश्ते पर चढ़ा दिया गया । आज से वीरनगर का ज़मींदार नवकुमार मित्र हुआ ।

ज़मींदार के हृदय में नये नये भावों का उदय होने लगा । जो नरेन्द्र के पिता का पहले पाँव पूजते थे, जिसने इतने दिनों तक नरेन्द्र को बड़े यत्न से पाला पोसा है, आज वह पितृ-मातृ-हीन बालक नरेन्द्र उनकी आँखों का शूल बन गया, काँटे की तरह उनकी आँखों में खटकने लगा । नवकुमार के मुँह पर तो नहीं, किन्तु परोक्ष में सब लोग यही कहा करते थे कि “ज़मींदारी नरेन्द्र के बाप की है ।” नवकुमार की ज़मींदारी है यह कोई नहीं कहता था । प्रजागण भी नरेन्द्र को ही ज़मींदार का पुत्र कहते और उसे आदर की दृष्टि से देखते थे । नये ज़मींदार नवकुमार इन सब बातों को कब सह सकते थे ? वे मन ही मन कहने लगे, “क्या मैंने अपवाद सह्य करने ही के लिए यह ज़मींदारी ली है ? फिर नरेन्द्र के साथ मेरी लड़की हेमलता का व्याह हो जाने पर कौन न कहेगा कि बाप की ज़मींदारी बेटे ने पाई ? मेरा नाम तो कोई न लेगा । तब इतनी बड़ी हैरानी उठा कर क्या हुआ ? मैं ज़मींदार होकर भी क्या पीछे उस बालक का दीवान बन कर रहूँगा ? क्या फिर मुझे दीवानगिरी का ही काम करना पड़ेगा । क्या यत्नपूर्वक ज़मींदारी की रक्षा करके अन्त में फिर नरेन्द्र को लौटा देना पड़ेगा ?” दीर्घदर्शी नवकुमार ने इस प्रकार मन ही मन सोच विचार कर स्थिर किया कि “वे या तो पोष्य पुत्र लेंगे या किसी दरिद्र बालक के साथ अपनी कन्या हेमलता को व्याह देंगे ।”

स्वार्थलोलुप, चतुर नवकुमार इस प्रकार अपने मन में निश्चय करके कार्यसाधन में तत्पर हुए। पास ही एक गाँव में गोकुलचन्द्रदास नामक एक सज्जन व्यक्ति रहते थे। वे एक पुत्र और एक विधवा कन्या तथा थोड़ी सी सम्पत्ति छोड़ कर इस संसार से चल बसे थे। पुत्र का नाम रमेशचन्द्र दास और कन्या का नाम शैवलिनी था। नवकुमार रमेशचन्द्र को बुला कर लालन पालन करने लगे। शैवलिनी अपनी ससुराल में रहा करती थी। कभी कभी वह अपने भाई को देखने के लिए वीरनगर आती और दो एक दिन रह कर फिर चली जाती थी। भाई के सिवा इस संसार में उस विधवा के और दूसरा कोई न था।

नवकुमार एकदम दयाशून्य न थे। उन्होंने वीरेन्द्र के परिवार को घर से न निकाला, वे लोग आज्ञाकारी सेवक की भाँति नवकुमार के घर का काम धन्धा करने लगे और दिन रात नवकुमार की खी की प्रशंसा और खुशामद किया करते थे, किन्तु छिप कर अपने भाग्य को कोसते और विधाता को दोष देते थे। नवकुमार अब भी नरेन्द्र का पालन पोषण करते थे। जब तब अपने प्रधान कर्मचारियों से मुसकुरा कर कहा करते थे—“क्या करें ! वीरेन्द्र ज़मींदारी की बात कुछ नहीं समझते थे। उन्होंने सारी ज़मींदारी को एक तरह से खो ही डाला था। दूसरे के हाथ में उनकी ज़मींदारी जाने से उनके पुत्र तथा अन्यान्य कुटुम्बियों को कष्ट होता, इस लिए हमी ने उनकी सारी सम्पत्ति अपने नाम से ख़रीद ली। नहीं तो ज़मींदारी में कुछ विशेष लाभ नहीं है। देखो, अनाथ नरेन्द्र को अभी हमी पोस

रहे हैं, वीरेन्द्र के और कितने ही कुटुम्बों इस समय निरवलम्ब हैं। उन लोगों को खाने पहरने को हमीं देते हैं। क्या करें? मनुष्य का दुःख हमसे देखा नहीं जाता। तुम लोग इस बात को सोच कर देखो, ईश्वर ने रुपया किस लिए दिया है? पाँच को खिला कर खाने ही में सुख है, न कि रुपया छिपा कर रखने में। हमारे पास कुछ रहे चाहे न रहे, पर दूसरे का दुःख हम नहीं देख सकते। तुम्हीं बतलाओ, यदि वीरेन्द्र के परिवार का हम पालन न करें तो उनकी क्या दशा हो?”

यह सुन कर मन्त्री लोग कहा करते—“सही है, यह आप ही से हो, आप धन्य हैं। आप साक्षात् दया के अवतार हैं, इसी से ऐसा धर्म का काम कर रहे हैं, दूसरा कौन ऐसा करेगा? एक से एक बढ़ कर जमींदार हैं। आप जितना वीरेन्द्र के परिवार वर्ग के लिए कर रहे हैं, ऐसा कौन किसके लिए करता है? यदि आप वीरेन्द्र को अपने यहाँ न रख लेते तो उसे कौन खाने को देता? या उसके और ज्ञातिवर्ग का कौन भरण पोषण करता? वे लोग जो दोनों समय भर पेट अन्न खाते हैं, यह केवल आपही के अनुग्रह का फल है। आपके सदृश धर्मात्मा कौन होगा?”

यह सुन कर नवकुमार मारे खुशी के फूल कर कुप्पा हो गये। आँखें विस्फारित कर मुसकुराते हुए गद्गद् कण्ठ से बोले—“नहीं बाबू, हम न तो धर्मात्मा हैं और न यही जानते कि धर्म अधर्म किसे कहते हैं? तब बात यह है कि दूसरों का दुःख देख कर हमसे रहा नहीं जाता, हम उनका कुछ न कुछ उप-

कार अवश्य करते हैं। यह हमारा आज का नहीं, किन्तु जन्म ही का स्वभाव है। कुछ वीरेन्द्र का परिवार जान कर हम ऐसा नहीं करते। इसमें हमें पाप हो चाहे पुण्य हो, हम उसका कुछ खयाल नहीं करते, केवल अपना कर्तव्य समझ कर करते हैं।”

हम ऊपर कह आये हैं कि नवकुमार एक दम खोटा आदमी न था। आप भी सोच कर देखिए, सब लोग नवकुमार को भाग्यवान् और बुद्धिमान् समझ कर आदर करते हैं। सभी उन्हें दयालु और देव-ब्राह्मण का भक्त जान कर उनका सुयश गाते हैं। कितने ही सभा-समाज के नेता तो मुक्तकण्ठ से यह कहा करते हैं कि “नवकुमार को लेकर ही उनकी सभा-समाज प्रतिष्ठित है। उन सभापरिचालकों का सर्वत्र आदर होता है, सब जगह प्रशंसा होती है और सभ्य मण्डली में बैठने को ऊँचा आसन मिलता है। जिस दिन महामहिम माननीय, महोदय दयाशीलसम्पन्न, धर्मसंस्थापक नवकुमार बाबू इस संसार में न रहेंगे उस दिन समाज मानों अपने सिर का अमूल्य रत्न खो देगा। उस दिन समाज अन्धकार के गड्ढे में गिर जायगा। समाज की सभी बातें चलविचल हो जायँगी। धर्म के ऊपर भारी आघात पहुँचेगा।” जिनका आदर सर्वत्र होता है, जिन्हें सभी लोग मानी, ज्ञानी और धार्मिक समझते हैं। हमारा तुम्हारा क्या अधिकार है कि उनकी निन्दा करें या उनकी स्वार्थपरता की समा-लोचना करें।

तीसरा परिच्छेद ।

बाल विधवा ।



ह पूर्व परिच्छेद में कहा जा चुका है कि शैवलिनी सांभू को गङ्गातट से लौट आई। वह सती साध्वी शान्तचित्त विधवा सायङ्काल का कृत्य समाप्त करके उन छोटे बालक बालिका के साथ गप्प करने बैठी। शैवलिनी महीने दो महीने पर एक बेर वीरनगर आ जाती थी। शैवलिनी गप्प करना खूब जानती थी। उसके सन्तान आदि कुछ न थे, इससे वह सभी बालकों को अपनी सन्तान के बराबर मानती थी। यही कारण है कि शैवलिनी लड़के लड़कियों की बड़ी प्रियपात्र थी। सभी छोटे बड़े लड़के उसे जी से चाहते थे। “शैवलिनी आई है और कहानी कहने बैठी है” सुन कर उस प्रकाण्ड महल के जितने बालक-बालिका-गण थे सभी एक एक कर आजुटे। उन बालक-बालिकाओं में कोई शैवलिनी के अनादर का पात्र न था। किसी को गोद में, किसी को पार्श्व में, किसी को सामने बैठा कर शैवलिनी महा-भारत की अमृतमयी कथा कहने लगी। हम यहाँ पाठकों को शैवलिनी का कुछ परिचय देना उचित समझते हैं।

शैवलिनी के पिता सामान्य अवस्था के लोग थे, पर थे अत्यन्त सज्जन। रमेशचन्द्र और शैवलिनी ने माता-पिता के

शीलस्वभाव और सद्गुणों का अंश कुछ कुछ पा लिया था । शैवलिनी अत्यन्त छोटी उमर में विधवा हो गई थी । उसे अपने व्याह तक की बात याद न थी । संसार के सुख-दुःख की प्रायः कोई बात वह नहीं जानती थी । वह एक प्रकार से जन्म की कुमारी बन, केवल माता की सेवा और छोटे भाई के लाड़प्यार के सिवा कुछ न जानती थी ।

शैवलिनी के पिता की मृत्यु होने के पीछे उन लोगों की अवस्था दिन दिन मन्द होने लगी, यहाँ तक कि अन्न का कष्ट कैसा होता है, यह भी अभागिनी शैवल और उसकी माता ने जाना । किन्तु वह प्रशान्तचित्त सुशीला विधवा (शैवलिनी) ज़रा भी धैर्यच्युत न हुई । वह बड़े तड़के उठ कर स्नान पूजा आदि नित्यकृत्य से छुट्टी पाकर अपनी बूढ़ी माँ और छोटे भाई को रसोई बनाकर खिलाती और घर का सारा काम अपने हाथ से करती थी । इसी प्रकार वह दोनों साँभ अपनी माता की सेवा और छोटे भाई के लालन-पालन में लगी रहती थी ।

/ शैवलिनी के काले भँवर सरीखे केश, बड़ी बड़ी आँखें और प्रसन्न मुख देख कर लोगों के हृदय में उस पर स्वाभाविक विशुद्ध प्रेम उत्पन्न हुए बिना नहीं रहता था । ।

शैवलिनी इस संसार में कुछ न चाहती थी । न वह सखी-सहेली चाहती थी, न उसे किसी विशेष सुख की अपेक्षा थी । जो आम, जामन, कटहल और हरसिंगार आदि के पेड़ उसके घर को चारों ओर से घेरे थे, जो दोपहर को ठंडी छाँह और साँभ को मर्मर शब्दों का सुख देते थे वही उसके सब सहचर

थे । शैवलिनी उन्हीं के साथ खेल कर जब तब अपना जी बहलाती थी । जैसे वं पेड़ पौधे प्रकृति के सन्तान थे, ठीक शैवलिनी भी वैसी ही प्रकृति की सन्तान थी । जो जगदीश्वर उन पेड़ों के रक्षक थे, वही शैवलिनी के भी थे । शैवलिनी बाल्यावस्था में विधवा हुई । वह प्रेम की भिखारिन न थी, क्योंकि सारा संसार ही उसके प्रेम का स्थान था । पेड़ों पर बैठ कर जो पक्षिगण गान करते थे वे भी शैवल के प्रेम की वस्तु थी, शैवल उन पक्षियों के स्वर में स्वर मिला कर गान करती थी और प्रतिदिन उन्हें खाने को चावल देती थी । शैवलिनी जब वृद्धा माता को सेवा द्वारा सन्तुष्ट कर सकती तब वह अपने को धन्य मानती, तब उसका हृदय प्रेम से उल्लसित हो उठता था ॥ माता को सुखी देख कर शैवल की आँखों में आनन्दाश्रु भर आते थे । जब वह बालक रमेश को गोद में लेकर उसका मुँह चूमती, जब छोटा सा बालक प्रसन्न होकर 'बहन' कह कर शैवल का चुम्मा लेता, तब शैवल का हृदय यथार्थ में ही आनन्द से विह्वल हो उठता और प्रेमाश्रु से उसका आँचल भीग जाता था)

जब सन्ध्या समय शैवलिनी निस्तरङ्ग शान्त नदी के गर्भ में चन्द्रतारागणमण्डित निर्मल आकाश का प्रतिबिम्ब देखती तब उसे भगवान् की अद्भुत महिमा का स्मरण हो आता था । जिस ईश्वर ने चन्द्रमा, तारागण और नदी को सिरजा है, जिसने चिड़ियों के प्रेमाधार छोटे छोटे बच्चे दिये हैं, जिसने शैवल को रमेश देकर दया दिखलाई है, उस ईश्वर के महोपकार का जब उसे स्मरण हो आता था तब उसके हृदय में अनन्त प्रेम की तरङ्गें लहराने लगती

थीं । शैवलिनी पति-पुत्र-विहीना है ॥ शैवलिनी के प्रेम का एक मात्र भागी कोई न था । * इस लिए बरसाती नदी के प्रवाह की भाँति शैवल का स्नेहजल चारों ओर जिधर पाता उधर ही वह जाता । गाँव के समस्त बालकों और बालिकाओं को शैवल बहुत प्यार करती, पशु-पक्षियों को भी वह प्यार की दृष्टि से देखती थीं । यद्यपि शैवलिनी अनाथा और दरिद्रिणी थी तथापि उसका हृदय उन्नत था । संसार में शैवलिनी के समान प्रेमिक और कौन होगा ? पृथ्वी जैसी विस्तृत है, समुद्र जैसा गम्भीर है, आकाश जैसा अनन्त है, शैवलिनी का प्रेम भी वैसा ही विस्तृत, गम्भीर और अनन्त था । ।

इसी भाँति कुछ दिन बीतने पर शैवलिनी की माँ परलोक-गामिनी हुई । धीरस्वभाव सद्वंशजात, सुन्दर सुशील रमेशचन्द्र को नवकुमार अपनी कन्या के साथ व्याह देने की इच्छा से वीरनगर ले आये । जिन लोगों की सेवा के लिए शैवलिनी ससुराल छोड़े हुई थी, उन लोगों के न रहने से शैवलिनी फिर अपनी ससुराल चली गई और वहीं रहने लगी ।

चौथा परिच्छेद ।

यह बालिका किसकी है ?



स घटना का उल्लेख पूर्व परिच्छेद में हुआ है उसको बीते चार वर्ष हुए । चार वर्ष में प्रकृति का कितना परिवर्तन होता है, यह पाठकगण स्वयं अनुमान कर लेंगे ।

रमेशचन्द्र की अवस्था इस समय सत्रह वर्ष की है । वे अब बालक नहीं हैं किन्तु एक धीर, साहसी, सुशील, शान्त, धर्मपरायण नवयुवक हैं । उनका प्रसन्नमुख और शील से भरे हुए दोनों नेत्र ही उनकी गम्भीरता और सुजनता का परिचय दे रहे हैं ।

नरेन्द्र भी देखते ही देखते १५ वर्ष का हो गया । इसने युवापन में अभी पैर रक्खा ही है । रमेश की अपेक्षा यह अधिक गोरा और तेजस्वी था, इसका शरीर लम्बा और पुष्ट था । चेहरा रोबदार था, किन्तु यह अत्यन्त तीव्र, क्रोधी और असहिष्णु था । नवकुमार के तिरस्कार को वह बरदाश्त नहीं कर सकता था । रमेशचन्द्र के यथार्थ गुणों की प्रशंसा भी उससे सही नहीं जाती थी । हमेशा उसका मुँह लाल और भौंहें चढ़ी ही रहती थीं । नरेन्द्र अब तक इतना भी जो कुछ सह रहा था, वह केवल हेमलता के लिए ।
मरुभूमि में एक मात्र जल के स्रोत की भाँति हेमलता का सुन्दर

मुखचन्द्र नरेन्द्र के सन्तप्त हृदय को शान्त और शीतल करता था। हेमलता के लिए वह नवकुमार का तिरस्कार भी सह लेता था और अपने उत्कट क्रोध को भी मन में ही दबा रखता था।

हेमलता अब तेरह वर्ष की हुई। उसके शरीर में नवयौवन के सभी चिह्न दिखाई देने लगे। हेमलता के लिए पद्माकर की यह कविता चरितार्थ होने लगी—

ऐ अलि, या वलि के अधरान में आनि चढ़ी कछु माधुरई सी।
ज्यों पदुमाकर माधुरी ल्यों कुच दोउन पै चढ़ती उनई सी ॥
ज्यों कुच ल्योंही नितम्ब चढ़यो कछु ज्योंही नितम्ब ल्यों चातुरई सी।
जानि न ऐसी चढ़ाचढ़ि में कहिधों कटि बीचहि लूट लई सी ॥

उस नवगठित कमलविनिन्दक कोमल शरीर में कैसे कैसे नवीन भावों का उदय होता था, उनकी वर्णना में हम अक्षम हैं। तब हेम के आचरण से जो भाव लक्षित होते हैं हम केवल उन्हीं का कुछ बखान कर सकेंगे। हेम अब भी नरेन्द्र के साथ बड़े प्यार से बातचीत करती है, नरेन्द्र के साथ बातचीत करके वह बहुत प्रसन्न होती है, किन्तु अब वह नरेन्द्र के मुँह की ओर देर तक नहीं देखती, सिर नीचा करके धीरे धीरे बात करती है। नरेन्द्र के मुँह की ओर एक बार पलक उठा कर देखती है, फिर तुरन्त आँखें नीची कर लेती है ॥ हेम की प्यासी आँखें नरेन्द्र को बार बार देख कर भी तृप्त नहीं होती। हेम चाहती है कि तिर्निमेष लोचन से बराबर नरेन्द्र के मुँह की ओर ताकती रहे, पर सङ्कोच ऐसा नहीं करने देता। लज्जा उसके सिर को नीचे की ओर झुका देती थी। नरेन्द्र की बात को वह बारंबार सोचती और मन ही

मन उमगती थी । जब सायंकाल में नरेन्द्र नाव पर चढ़ कर गङ्गा की धार में इधर उधर फिरता था तब हेम भरोखे पर बैठ कर स्थिर दृष्टि से नरेन्द्र के जलविहार का तमाशा देखा करती थी । जब तक नरेन्द्र की नाव हेम की दृष्टि से बाहर न होती थी तब तक वह उसी ओर दृष्टि किये बैठी रहती थी । साँझ होने पीछे जब नरेन्द्र घर आकर हेम का नाम लेकर पुकारता तब हेम के आनन्द की सीमा नहीं रहती । उसका सम्पूर्ण शरीर पुलकित हो जाता और हृदय खुशी के मारे नृत्य करने लगता था । जब नरेन्द्र दो एक दिन के लिए कहीं अन्यत्र जाता था तब हेम को खाना पीना कुछ न सुहाता और वह अनमनी सी होकर रहती थी ।

नरेन्द्र के ऊपर जो हेम का ऐसा हार्दिक प्रेम था, नरेन्द्र को जो वह हृदय से इतना चाहती थी, यह कोई न जानता था, हेम के मन की बात किसी को नहीं लख पड़ती थी । कबूतर जिस तरह अपने बच्चे को बड़े यत्न से घोंसले में छिपाये रहता है, मुग्ध बालिका भी उसी तरह अपने इस नये भाव को हृदय में बड़े यत्न से छिपाये रहती थी । बालिका भी अपने मन के इस अपूर्व भाव को आप ठीक ठीक नहीं समझ सकती थी । न समझ कर भी वह इस प्रिय भाव को लोगों से क्यों छिपाती थी ? यह हम नहीं कह सकते ।

वृद्ध नवकुमार हेम को अब भी बालिका ही समझते थे । उसकी भोली सूरत देख कर वे ऐसा क्यों नहीं समझते ? ब्याह देने से उनकी एक मात्र कन्या दूसरे की हो जायगी, इस भय से उन्होंने जितने दिन हो सका उसे अविवाहित अवस्था में ही रक्खा ।

रमेशचन्द्र को भी हेम के हृदय का कुछ पता न लगा । लगता कैसे ? हेम उनके साथ सदा ही निश्छल व्यवहार रखती, सङ्कोच-रहित हो बात करती थी । रमेशचन्द्र से वह प्रतिदिन पढ़ना लिखना सीखती थी, रोज़ ही उनको अपना पाठ सुनाती और उनके उपदेश को ग्रहण करती थी । नरेन्द्र जब कभी हेम को पढ़ाने बैठता था तब हेम का चित्त न मालूम क्यों चञ्चल हो जाता था ? वह अनेक प्रयत्न करने पर भी अपने मन को स्थिर नहीं रख सकती थी । नरेन्द्र पढ़ा कर जब उससे कुछ पूछता तब वह भली भाँति उत्तर नहीं दे सकती थी, अच्छी तरह याद किया हुआ पाठ भी नरेन्द्र के निकट वह भूल जाती थी । घर की कोई ऐसी घटना न थी, जो हेम रमेश के कानों तक न पहुँचाती । रमेश के उपदेश के खिलाफ़ वह कोई काम न करती थी । नरेन्द्र हेम का उपदेशक न था । नरेन्द्र जब कभी हेम के पास पढ़ने के समय आता था तब प्रस्तुत बात को छोड़ कर वह और ही तरह की बात करने लग जाती या देर तक कुछ न बोलती थी, इस लिए रमेश समझते थे कि बालिका के हृदय में जो कुछ प्रणय या भक्ति है वह रमेश के ही लिए है । रमेश ही उसके एकमात्र प्रेमाधार हैं ।

पाँचवाँ परिच्छेद ।

बिदाई ।



सी तरह कुछ समय बीता । एक दिन साँझ को रमेश और नरेन्द्र एक नाव में बैठ कर गङ्गा के प्रवाह में इधर उधर घूम फिर कर दिल बहला रहे थे । नरेन्द्र अपना बल दिखलाने के लिए साँझी को हटा कर दोनों हाथों से दो पतवार लेकर नाव चलाने लगा । नाव बड़े वेग से बह चली । रमेश चुपचाप बैठे हुए सायंकाल की प्राकृतिक शोभा देख रहे थे । रमेश और नरेन्द्र में कभी हार्दिक प्रेम या सहानुभूति न थी । दोनों का स्वभाव भिन्न भिन्न था । आज एक छोटी सी बात लेकर दोनों में वाद-विवाद होने लगा । नरेन्द्र के हाथ से सहसा एक पतवार छुट जाने से वह गिर पड़ा, यह देख कर रमेश ने खूब जोर से हँस कर कहा—‘जिसका काम है, उसी को करने दो । वीरता दिखलाने की आवश्यकता नहीं ।’

उस समय हेम गङ्गा की निकटवर्ती अटारी पर खड़ी होकर यह सब दृश्य देख रही थी । हेमलता के सम्मुख इस प्रकार अपने को अपदस्थ होते देख नरेन्द्र को मर्मान्तिक कष्ट हुआ । उस पर रमेश की यह रहस्यभरी बात उसे और भी असह्य हो उठी । रमेश की इस हँसी ने उसके ज़खमी जिगर पर मानो नमक छिड़क दिया । नरेन्द्र ने रमेश को अत्यन्त कठोर शब्दों में

उत्तर दिया। क्रमशः विवाद बढ़ने लगा। नरेन्द्र का हृदय तुरन्त क्रोध से जल उठा। उसने उचित अनुचित का कुछ विचार न कर दो चार खरी खोटी बातें रमेश को कह सुनाईं। रमेश भी अब अपने क्रोध को न रोक सका। उसने कहा—“तुम से बदमिज़ाजों के साथ कलह करना क्या है मानो अपनी इज्ज़त गँवाना है। तुम्हारे साथ विवाद करने में भी हम अपना अपमान समझते हैं।”

रमेश के मुँह से यह तिरस्कार भरी बात सुन कर नरेन्द्र बेतरह बिगड़ा। वह क्रोध में उन्मत्त होकर रमेश को मारने पर उतारू हुआ। रमेश भी उठ खड़ा हुआ। क्रुद्ध, ज्ञानशून्य नरेन्द्र ने एकाएक रमेश को जोर से ढकेल कर पानी में गिरा दिया। “बाबू पानी में गिरे, पानी में गिरे” कह कर मझाह चिछाने लगा। एक आदमी भट पानी में कूद कर रमेश को अज्ञानावस्था में खींच कर नाव पर ले आया।

कुछ रात बीतते बीतते जब रमेश और नरेन्द्र घर आये, तब नवकुमार ने नरेन्द्र को बुला कर खूब फटकार बताई और डाट कर कहा—“तुमने आज वह काम किया जो एक मूर्ख भी नहीं करता। क्या तुमने रमेश को गङ्गा की धार में ढकेल कर आज भारी अनर्थ न किया? वहाँ मझाह न रहता तो आज वह ज़रूर डूब न मरता?”

निर्बोध क्रोधशील नरेन्द्र ने कहा—“वह मेरे साथ कलह करने क्यों आया?”

नवकुमार—“छी: छी: ! रमेश के साथ झगड़ा करते तुम्हें लज्जा

नहीं आती ? क्या तुम इसकी खबर नहीं रखते कि तुम कौन हो, और रमेश कौन है ? क्या तुम रमेश की बराबरी करते हो ?”

नरेन्द्र क्रोध से कांपता हुआ बोला—“हम रमेश की बराबरी क्यों करेंगे, रमेश रमेश ही है, हम हमी हैं। कौन नहीं जानता कि हम ज़मींदार वीरेन्द्रसिंह के पुत्र हैं ? रमेश एक दरिद्र का बालक है, दूसरे के अन्न से पला है, भला हम और वह बराबर कैसे हो सकते हैं ?

नवकुमार ने नरेन्द्र के मुँह से आज तक कभी ऐसी बात नहीं सुनी थी, इससे वे कुछ विस्मित और क्रुद्ध होकर बोले—“जानते हो किसके साथ बात कर रहे हो ?”

नरेन्द्र—“जानते हैं, जिस दरिद्र सन्तान ने हमारे पिता से पालित होकर काले साँप की भाँति उन्हीं को काट खाया; जो इस समय उनकी सारी सम्पत्ति लेकर धनाढ्य बन बैठा है, उसी नवकुमार बाबू से बात कर रहे हैं।”

नवकुमार एक घड़ी तक कुछ न बोले। मारे क्रोध के उनका कण्ठ रुद्ध हो गया था। वे कुछ बोलना चाहते थे, पर मुँह से बात नहीं निकलती थी। पीछे उन्होंने कहा—“कृतघ्न कहीं का, तेरे पिता ने बेवकूफी से अपनी ज़मींदारी को बरबाद कर डाला। मैंने तुम्हें असहाय बालक को इतने दिनों से पाल पोस कर बड़ा किया उसका फल यही ! आज रमेश को डुबोया है, कल मेरे गले पर छुरी फरेगा। तू आज ही मेरे घर से दूर हो।”

नरेन्द्र—“बहुत अच्छा, मैं अभी जाता हूँ। किन्तु तुम इस जन्म में या दूसरे जन्म में अपने किये का फल ज़रूर भोगोगे।”

यह कह कर नरेन्द्र गङ्गा किनारे आया। वहाँ आकर उसने देखा, हेमलता अकेली घूम रही है और बीच बीच में खड़ी होकर मन ही मन न मालूम क्या सोचती है। आज जो जो घटना हुई थी, वह सब सुन चुकी है। हेमलता को देख कर नरेन्द्र ज़रा ठहर गया। उसने देखा, हेम आँखों पर कपड़ा दिये रो रही है, और आँसू से अपने आँचल को भिगो रही है।

हेम की यह दशा देख नरेन्द्र का क्रोध जाता रहा। वह भट्ट हेम के पास आकर और उसका हाथ पकड़ कर बोला—“हेम, तुम क्यों रोती हो?”

हेम बड़ी अधीरता लिये बोली—“नरेन्द्र, नरेन्द्र, मेरा हाथ छोड़ दो। रमेश को मैं अपने बड़े भाई की तरह मानती हूँ, उनको तुमने नाव पर से ढकेल कर पानी में गिरा दिया? मेरे पिता को काला साँप कह कर गाली दी है। तुम हम लोगों को तुच्छ समझ कर घृणा करते हो। मेरा हाथ छोड़ दो।”

रमेश को पानी में डाल देने पर भी क्रुद्ध नरेन्द्र को चैतन्य न हुआ। नवकुमार का कटुवचन से तिरस्कार करने पर भी उसे ज्ञान का उदय न हुआ, किन्तु अभी हेम की आँखों में आँसू देख कर और उसकी चुटीली कातरोक्ति सुन कर निर्बोध नवयुवक नरेन्द्र को होश हो आया। उसने धीरे धीरे हेम का आँसू पोछ कर और अपने दोनों हाथों से उसका हाथ थाम कर गिड़गिड़ाते हुए कहा—“हेम, चमा करो, मुझ से अपराध हुआ, सचमुच आज मैंने बड़ी भूल की। रमेश का कुछ दोष न था, मैंने उजड़ की तरह बिना कुछ सोचे विचारे उन्हें ढकेल कर पानी में गिरा दिया।

मुझ से यह बेशक मूर्खता का काम हुआ। तुम्हारे पिता को गाली देकर मैंने चाण्डाल का काम किया है। क्रोधी व्यक्ति और चाण्डाल में क्या भेद है? बल्कि क्रोधी आदमी चाण्डाल से भी बढ़ कर निन्दित काम कर बैठते हैं। किन्तु हेम, अब मेरा अपराध क्षमा करो। तुम्हारे सिवा संसार में कोई ऐसा नहीं है जो स्नेहपूर्वक दो एक मीठी बात मुझ से कहे। मैं आज इस देश को छोड़ता हूँ। देशत्याग के पहले तुम्हारे मुँह से दो एक स्नेह भरी बातें सुना चाहता हूँ। हेम, अब मुझे क्षमा करो। एक बार दया-दृष्टि से मेरी ओर देखो।”

हेम का हृदय द्रवित हुआ। नरेन्द्र के दोषों को भूल कर उसने उसे गङ्गा के किनारे बालू पर बैठाया और आप भी उसके पास बैठी। हेम अपनी आँखों के आँसू पोछ कर कहने लगी—
“नरेन्द्र, तुम क्यों देशत्याग करोगे? तुम हम लोगों को छोड़ कर कहीं जाओगे? यदि पिता ने क्रोध करके कुछ कहा तो कहने दो, इसके लिए तुम वीरनगर क्यों छोड़ोगे? मैं अपने पिता के निकट हाथ जोड़ कर तुम्हारे अपराध की क्षमा के हेतु प्रार्थना करूँगी और उनके क्रोध को शान्त करूँगी। नरेन्द्र, तुम वीरनगर छोड़ कर कहीं मत जाओ।”

। हेमलता का यह अनुनय व्यर्थ हुआ। उद्धत नरेन्द्र ने हेमलता की आँखों में आँसू देख कर क्षमा के लिए प्रार्थना तो की, किन्तु उसके हृदय में जो आज चोट लगी है, उसकी शान्ति का कोई उपाय नहीं। नरेन्द्र ने कहा—“हेमलता, तुम मेरे रहने के लिए व्यर्थ मुझ से अनुरोध करती हो। वीरनगर में अब मेरे ठहरने की

जगह नहीं। मैंने जो कितने ही दिनों से, कई वर्षों से, पिता के इस विशालभवन में यातना सही है, वह तुम नहीं समझ सकोगी। उस असह्य यातना को केवल तुम्हारा मुँह देख कर ही मैंने इतने दिन सहा है। जिस देश में हमारे प्रातःस्मरणीय पिता राजा थे, उस देश में मैंने दूसरे का आश्रित होकर अपनी मान-मर्यादा गँवा कर दूसरे के द्वारा प्रतिपालित होकर, जीवन का इतना अंश बिताया है, यह केवल तुम्हारे ही स्नेह के कारण। मैं जो इतने दिन इतना अपमान सह कर यहाँ था, वह केवल तुम्हारे ही स्नेह की आशा से। वह आशा भी आज निर्मूल हुई। आशा थी, तुम्हारे पिता मेरे साथ तेरा व्याह करेंगे। मेरी इस बात से तुम क्रोध न करो, न लज्जा ही करो, यह लज्जा या क्रोध करने का अवसर नहीं है। मैं तुम्हारे पिता के जी की बात समझ गया। वे विनयी रमेश को हृदय से चाहते हैं। मैं उनकी आँखों का शूल हो रहा हूँ। मुझे अब वे देखना नहीं चाहते। वे रमेश को कन्या देंगे। क्या मैं यही देखने के लिए यहाँ रहूँगा? मैं अपनी आँखों यह कैसे देख सकूँगा? हेमलता, मनुष्य इस आघात को कभी नहीं सह सकता। यह सहिष्णुता ऋषि-मुनियों के सिवा साधारण मनुष्यों में नहीं पाई जाती, मैं ऋषि नहीं हूँ। हेम, तुम मुझे जाने से न रोको, तुम खुशी से जाने कहो। वीरनगर में मेरे लिए अब जगह नहीं है।

कुछ देर तक दोनों चुप रहे। पीछे नरेन्द्र ने फिर धीरतापूर्वक कहा—“हेमलता, रोओ मत, रोने के लिए सारी ज़िन्दगी पड़ी है। एक बार मेरी बात सुनो, मैं जन्म भर के लिए आज तुमसे विदा होने आया हूँ। कहाँ जाऊँगा, क्या करूँगा? यह मैं नहीं

जानता । संसार में लाखों क्या करोड़ों जीव पड़े हैं । मुझे भी कहीं रहने की जगह मिल जायगी । किन्तु इस जनाकीर्ण संसार में आज से मैं अकेला हुआ । जिस देश में जाऊँगा, जहाँ जाऊँगा, वहाँ घनेरे लोग मिलेंगे । किन्तु उन लोगों में मैं ही एक बन्धु-वान्धव-विहीन, गृहहीन दीन होकर रहूँगा । इस संसार में कोई ऐसा नहीं जो नरेन्द्र को अपना समझेगा या नरेन्द्र के लिए दो बूँद आँसू गिरावेगा ।

हेमलता चुपचाप आँसू की धार बहा रही थी । अब उससे न रहा गया । वह ज़ोर से रो उठी । नरेन्द्र की आँखों में आँसू न था । पर हेम का वियोग उसके हृदय को अभी से मसोस रहा था । नरेन्द्र फिर धीरे धीरे कहने लगा—“हेम, ज़रा ठहर जाओ, कुछ देर के लिए रोना बन्द करो, मैं नहीं रोता, पर मेरा दिल तुम्हारे लिए रो रहा है । मेरे मन में जो इस समय मर्मान्तिक कष्ट हो रहा है, वह रोने से कहाँ तक प्रकट हो सकता है । हेम, तुम्हीं एक मुझे प्यार करती हो । तुम्हीं एक स्नेह की दृष्टि से मुझे देखती हो । तुम्हारे ही हृदय में मेरे सुख-दुःख की भावना रहती है । किन्तु नरेन्द्र तुमको कितना चाहता है, तुम पर नरेन्द्र का कितना गाढ़ा प्रेम है । यह तुम नहीं जानती, तुम अभी बालिका हो । तुम्हारे हृदय में अभी उस अपूर्व भाव का अनुभव नहीं हो सकता । किन्तु अब वह स्वप्न दूर हुआ । जीवन का एक मात्र आशाप्रदीप आज बुझ गया । आज से नरेन्द्र को चारों ओर अँधेरा ही अँधेरा सूझता है । इस अँधेरे में नरेन्द्र जब तक जीवित रहेगा, देश देश, जंगल जंगल भटकता फिरेगा ।”

इतना कह कर नरेन्द्र चुप हो रहा; कुछ देर पीछे फिर धीरे धीरे बोला,—“हेमलता, तुमसे एक बात और कहना है। लड़कपन में हम तुम दोनों ने मिल कर यह माधवीलता लगाई थी। हम लोगों के स्नेह की भाँति यह लता भी बढ़ गई है। अब इसके रहने की क्या आवश्यकता ?

नरेन्द्र ने उस लता को उखाड़ लिया और उसका एक कङ्कण (कँगना) बनाया है। वह धीरे धीरे हेमलता के हाथ में पहना कर कहा—“हेम, जितना जल्द फूल सूखता है, उतना जल्द लता नहीं सूखती। तुम भी कुछ दिनों तक मेरा स्मरण रखोगी, आशा तो ऐसी ही है। जितने दिन तुम्हारा स्नेह मुझ पर रहे, उतने दिन तुम इस माधवीलतानिर्मित कङ्कण को रखे रहोगी। जब इस अभाग की सुध हृदय से जाती रहे, जब इस भाग्यहीन को एकदम भूल जाओ तब इस सूखी लता को नदी के जल में फेंक देना।

शोक से अकुलाती हुई हेमलता ने विस्मित होकर बड़ी अधीरता से नरेन्द्र की ओर देखा। नरेन्द्र चित्रवत् खड़ा था। उसका स्वर ज़रा भी कम्पित न हुआ था। उसकी आँखों में आँसू न था। किन्तु उसकी आँखों से आग की चिनगारियाँ निकल रही थीं। नरेन्द्र धीरे धीरे हेम का हाथ छोड़ कर चला गया। उस अंधेरी रात में वह किधर गया यह किसी ने नहीं देखा।

छठा परिच्छेद ।

एकाकिनी बालिका ।



मध्याह्निक बीत चली । चारों ओर अँधेरा छा गया है । अब भी तेरह वर्ष की एक बालिका गङ्गा किनारे बैठी है, और स्थिर दृष्टि से गङ्गा की तरङ्ग की ओर देख रही है । वह टकटकी बाँधे इस तरह तरङ्ग की ओर क्यों निहार रही है ? ज़रूर उसके मन में कोई चिन्ता है । चिन्ता कुछ साधारण नहीं है । यह प्रज्वलित चिन्ताग्नि हेम के हृदय को बेतरह जला रही है । उसका कलेजा फट रहा है । देखते देखते उसकी आँखों में आँसू भर आये । यद्यपि उसे अब कुछ नहीं सूझता, तथापि वह उसी तरह ताक रही है ।

बहुत देर पीछे हेम का जी ठिकाने आया । वह धीरे धीरे वहाँ से उठ कर घर आई । नवकुमार के घर के सभी लोग खा पीकर सो रहे थे । हेम को आज भूख प्यास काहे को होगी । नौद का तो नाम ही न लीजिए । आज की रात उसके लिए कैसी भयानक थी, यह उसी का जी जानता था । हेम धीरे धीरे पलङ्ग से उठ कर झरोखे के निकट आई । झिलमिली खोल कर उसने बाहरी दृश्य पर दृष्टि डाली । देखा, ऊपर आकाश में तारागण जगमगा रहे हैं । नीचे कलकल शब्द करता हुआ गङ्गा का प्रवाह पश्चिम से पूरब की ओर जा रहा है । इसके

सिवा उस अँधेरी रात में और कुछ न देख पड़ा। वह गङ्गा के प्रवाह की ओर टकटकी बाँध कर देखने लगी। उसके मन में एक एक कर सभी बातों का स्मरण होने लगा। जो बात वह एकदम भूल गई थी, जिसका कभी स्वप्न में दृगोचर तक नहीं होता था सो सब इस समय उसकी आँखों के सामने नाचने लगी। बाल्यकाल के खेल, बात बात में साथियों से अनबन और तुरन्त उनसे फिर सलाह, किशोर अवस्था के नये नये भाव, नवीन प्रेम का उदय, नई चिन्ता ऐसी ही अनेक बातें आज उसके कोमल हृदय पर आघात पहुँचाने लगीं। एक एक बात पर आज वह हज़ार हज़ार आँसू गिरा रही है। इस समय उसके पास उसकी आँखों के आँसू पोंछने वाला कोई नहीं है। वह आपही रोती है, आपही धैर्य धारण करती है। रोते रोते जब उसका जी भर जाता है तब वह फिर एक बार गङ्गा की ओर देखती है। फिर कोई बात याद आ जाने पर रौने लगती है। इसी तरह रोते रोते वह थक गई तथापि उसका रोना बन्द न हुआ। रात एक पहर बीती, दूसरा पहर भी बीता, यों ही पहर पर पहर बीतने लगा। पर हेम को इसकी कुछ ख़बर नहीं, वह उसी तरह रो रो कर अपनी आँखें फोड़ रही थी। कभी भरोखे के पास खड़ी होती है, कभी बैठती है और कभी धरती पर लेटती है, पर चुपचाप रोती ज़रूर है।

शोक का पहला वेग शान्त हुआ। किन्तु वह एकबारगी निवृत्त होने का नहीं। हेमलता गाल पर हाथ रख गवाक्ष के पास बैठ कर फिर सोचने लगी। फिर उसकी आँखों में आँसू

भर आये। वह आँसू रोकने की चेष्टा करती है, पर उसे रोक नहीं सकती। आँसू पोंछते पोंछते उसका सारा कपड़ा भीग गया, पर तो भी उसकी आँखें आँसू से खाली नहीं हैं। रात बीत चली। प्रभातकाल का प्रकाश आकाश में छा गया। धीरे धीरे पूरब ओर लालिमा दिखाई देने लगीं। किन्तु वह बालिका अब भी गाल पर हाथ दिये उसी तरह झरोखे के पास बैठी है। अब भी उसी तरह उधेड़बुन में लगी है। अब भी उसके मन में चिन्ता का तार बँधा है। इस चिन्ता का तार कब टूटेगा, कौन कह सकता है ?

सवेरा हो गया, सूर्य का प्रकाश देख हेम एक बार अचम्भे में आ गई। वह अभी रात ही समझे बैठी थी, एकाएक सूर्य की प्रभा देख कर वह चकित हो उठी। रोते रोते उसकी आँखें सूज गई थीं। रात भर जगी रहने के कारण उसका शरीर शिथिल हो रहा था। चिन्ता से मुँह पर एक अजब तरह की उदासी छाई हुई थी। हेम धीरे धीरे वहाँ से उठ कर नीचे उतर आई और चुपचाप घर के कामों में लगी। हेम को आज घर के कामों में जी क्यों नहीं लगता ? आज उसे और लोगों के रहते घर सूना सा क्यों प्रतीत होता है ?

यों ही प्रतिदिन हेम झरोखे के पास जा बैठती, और गङ्गाजी के प्रवाह की ओर निहारा करती। क्या सवेरे, क्या साँझ, क्या दोपहर दिन क्या आधीरात, जभी उसके जी में आता, जभी वह अवकाश पाती झरोखे पर बैठ कर गङ्गा का प्रवाह देखती और अपने सन्तप्तहृदय को कुछ देर के लिए ठंडा करती। वह वहाँ

बैठ कर क्या क्या सोचती ? कितनी बातें उसके मन में उदित होती थीं, यह कौन जान सकता है ? एक दिन नरेन्द्र ने उसके कान में क्या कहा था, एक दिन वह गङ्गा के उस पार से हेम के लिए क्या लाया था, एक दिन नरेन्द्र और हेम ने पेड़ से आम तोड़ कर छिप कर खाया था । एक दिन हेम पिता से बिना आज्ञा लिये नरेन्द्र के साथ चुपचाप सन्ध्या समय नाव पर चढ़ी थी । एक दिन हेम ने अपने हाथ से फूलों की माला गूँथ कर नरेन्द्र के गले में पहना दी थी । एक दिन नरेन्द्र ने हेम की चिकुर-राशि को फूलों से सजा दिया था । इस तरह की सैकड़ों बातें एक साथ नदी की तरङ्ग की भाँति हेम के हृदय में उठती थीं और विलीन होती थीं । यों ही एकान्त में बैठ कर कभी दोपहर दिन से सन्ध्याकाल पर्यन्त, कभी सन्ध्या से आधीरात तक हेमलता चुपचाप सोचती थी । बीच बीच में कई बार उसकी आँखों में आँसू उमड़ आते थे, पर कोई देख न ले, इस भय से वह झट आँसू पोछ डालती थी । जिस दुःख से हेम दुखी थी, जिस सोच से हेम का शरीर दिन दिन गला जाता था, उस दुःख या सोच का भागी नवकुमार के घर में दूसरा कोई न था । हेम अपने मन की बात किसी से नहीं कहती । वह कहती ही किससे ? वह केवल छिप कर मन ही मन सोचना और रोना जानती थी । घर के लोगों के निकट से दूर हट कर वह चुपचाप सोचा करती थी । कभी कभी शोक का समुद्र उमड़ पड़ने से वह मन के भाव को छिपा नहीं सकता थी । उसकी आँखों से आँसू की धारा वह चलती थी ।

क्रमशः वसन्त का अन्त लगा । ग्रीष्म का आगम हुआ ।

प्रकृति की शोभा वङ्गदेश में चारों ओर फैल गई । भाँति भाँति के फल, फूल चित्त को मोहने लगे, पक्षियों के कलरव से वन उपवन भर गया । नवपल्लवित वृक्ष पवन के साथ खेलने लगे । एक डाल से दूसरी डाल पर उमङ्ग से भरे हुए पक्षियों का चहचहाना चित्त में एक अपूर्व आनन्द उत्पन्न करने लगा । सूर्य की प्रखर किरणों से उत्तप्त होकर पथिकगण पेड़ पेड़ के नीचे विश्राम लेने लगे । दोपहर दिन को हेमलता उपवाटिका में जा पेड़ की छाया में बैठ कर चुपचाप पक्षियों का गान सुनती और गाल पर हाथ रख मनही मन सोचती थी । जब तक सायंकाल के गाढ़े अन्धकार में पेड़ छिप न जाते थे, तब तक वह उसी तरह चिन्ता में डूबी रहती थी ।

धीरे धीरे ग्रीष्म भी बीत गया । वर्षा ऋतु आई । काले बादलों ने सारे आकाश-मण्डल को ढक लिया । बिजुली की चकाचौंध से लोगों की आँखें छिपने लगीं । वर्षा की झड़ी लग गई । नदी नाले भर गये । किन्तु हेम का निरानन्द हृदय सूखा का सूखा ही रहा ।

वर्षा बीत चली । शरद का सुहावना समय आया । शारदी पूजा की चारों ओर धूम मच गई । सभी लोग दसहरे का उत्सव मनाने लगे । सरोवर के स्वच्छ जल में प्रफुल्ल कमलवन की शोभा दर्शकों के हृदय को लुभाने लगी । निर्मल आकाश में चन्द्रमा की छटा देख किसका चित्त प्रसन्न न होता था ? परन्तु हेम का हृदय-रूपी आकाश अब भी अन्धकार से भरा है । अब भी उसके मुँह पर प्रसन्नता का चिह्न दिखाई नहीं देता ।

ये ही हेमन्त शिशिर भी बीता, पर हेम का उत्ताप वैसा ही बना रहा । उसके हृदय की शोकाग्नि बलती ही रही । उसके मन की चिन्ता ज्यों की त्यों बनी ही रही ।

नवकुमार के इतने बड़े साम्राज्य में सभी लोग सुखी हैं । न किसी के मन में कुछ चोभ है, न किसी को किसी बात का अभाव है और न कुछ दुःख है । किन्तु नवकुमार के परिवार में एक मात्र उनकी स्नेह-पालित बालिका विषण्ण है, शोकाकुल है और सोच से दिन दिन खिन्न हुई जाती है । उनके परिवार में उतने लोगों के रहते भी हेमलता एकाकिनी है ।

सातवाँ परिच्छेद ।

संसार में एकाकी ।

नरेन्द्र तैरने में अत्यन्त कुशल था । वह उसी रात में न तैर कर गङ्गा के उस पार चला गया । सामने उसने दूर तक बालू का ढेर देखा । उसके आगे उसने मैदान के सिवा और कुछ न देखा । नरेन्द्र उस अँधेरी रात में भीगे शरीर और भीगे वस्त्र से उस तीरवर्ती बालुओं पर टहलने लगा ।

नरेन्द्र ने गङ्गा के उस पार को ध्यान से देखा । आधी रात उस घोर अन्धकार में भी वीरनगर की श्वेत अट्टालिका कुछ कुछ दिखाई दे रही है । नरेन्द्र उस अट्टालिका की ओर देर तक देखता रहा । निस्तब्ध रात में केवल गङ्गा का कलकल शब्द सुन पड़ता है और बीच बीच में उल्लू का भीषण शब्द सुनाई देता है । कुछ दूरी पर रह रह कर शृगाल बोल उठता है । नरेन्द्र का ध्यान गङ्गा की धार की ओर न था, न वह उल्लू या शृगाल की बोली सुन रहा था । वह चुपचाप अँधेरे में टहल रहा था । बहुत देर के बाद उसने फिर एक बार वीरनगर की ओर देखा । किन्तु अन्धकार इतना गाढ़ हो गया था, कि वह अब ज़रा भी नहीं देख पड़ा । नरेन्द्र एक लम्बो साँस लेकर

वहाँ से बिदा हुआ। सामने जो रास्ता मिल गया, उसी के सहारे आगे बढ़ा।

नरेन्द्र कहाँ जा रहा है, उसे मालूम नहीं। वह केवल आँख मूँदे, रास्ता पकड़े आगे की ओर जा रहा है। ऊपर असीम आकाश है, नीचे बहुत विस्तृत मैदान है। नरेन्द्र की चिन्ता भी असीम है। वह चिन्ता में मग्न होकर अपने को भूला हुआ है। कहाँ उसका पाँव पड़ता है किधर जा रहा है, इसका उसे कुछ भी खयाल नहीं है। सड़क के पार्श्ववर्ती बरंगद के पेड़ के पास नरेन्द्र को आते देख कितने रात्रिचर पक्षी अपने अपने घोंसलों को छोड़ आकाश में उड़ने लगे। दूर से कुत्तों के भूकने की आवाज़ आ रही थी, किन्तु इन बातों से नरेन्द्र का क्या सम्बन्ध। उसका ध्यान किसी और तरफ़ लगा था।

योही जाते जाते बहुत दूर पर उसे एक गाँव मिला। गाँव के सभी लोग सोये थे। वृत्तों से घिरे हुए छोटे छोटे घर देख पड़ते थे। उन वृत्तों पर कहीं कहीं जुगनू की ज्योति जगमगा रही थी। नरेन्द्र को देख कर गाँव के कुत्ते भूँकने लगे। दो एक गृहस्थों ने दर्वाज़ा खोल कर देखा, पर नरेन्द्र अपना रास्ता पकड़े चला जा रहा था। उसने किसी तरफ़ ध्यान न दिया। गाँव का रास्ता ठीक ठीक न जानने के कारण वह कई बार ऊँची नीची भूमि में ठोकर खाकर गिरा, कई जगह झाड़ियों में उलझ कर उसका वदन छिल गया, बबूल के जङ्गल के भीतर से होकर जाने में तो उसकी बड़ी ही दुर्गति हुई। कांटों से उसका सारा अङ्ग चत-वित्त हो गया। पर इन सब आपदाओं को नरेन्द्र ने अपने जी में कुछ न

गिना । इस प्रकार अँधेरे में भाँति भाँति के कष्टों को सहता हुआ गाँव से निकल कर वह एक मैदान में आ पड़ा ।

धीरे धीरे नरेन्द्र उस मैदान को भी पार कर एक दूसरे गाँव में आया । चुप चाप उस गाँव से निकल कर आगे बढ़ा । इसी तरह नरेन्द्र उस रात में कई एक गावों को लाँघता हुआ आगे की ओर बढ़ता ही गया । रास्ते में उसे कितने गाँव मिले, उनकी तादाद कौन बतला सकता है ? खुद नरेन्द्र भी नहीं कह सकता ।

सारी रात योंही चलते चलते नरेन्द्र ने सामने एक बहुत बड़ा मैदान देखा । मैदान में एक जगह आग जल रही थी । नरेन्द्र उस आग के प्रकाश की तरफ बढ़ चला । प्रायः दो मील चल कर उसने धधकती हुई आग के पास पहुँच कर देखा, कितने ही लोग एकत्र होकर मुरदा जला रहे हैं । नरेन्द्रनाथ ठिठक कर खड़ा हो रहा । वह स्थिर होकर शवदाह देखने लगा । लकड़ी एक बार खूब जोर से धधक उठती थी, फिर तुरन्त निस्तेज हो जाती थी । उस न्यूनाधिक प्रकाश में नरेन्द्र का लम्बा आकार और सूखा सा मुख लोगों को दिखाई देने लगा । जो लोग मुर्दा जलाने आये थे उन लोगों ने वहाँ से कुछ दूर पर नरेन्द्र को खड़ा देख, उसे एक थका हुआ पथिक जान कर पास आने कहा । किन्तु नरेन्द्र उन लोगों के पास न आया । उन लोगों ने हार कर दूर से परिचय पूछा, नरेन्द्र ने कुछ उत्तर न दिया । वे लोग कुछ देर नरेन्द्र का विशाल शरीर और भयानक मुँह देख कर डर गये और सब के सब नरेन्द्र को भूत समझ कर वहाँ से भाग चले ।

बड़े तड़के गाँव की स्त्रियाँ बगल में घड़ा दाब कर जल भरने

के लिए गड़गातट जा रही थीं। वे सड़क पर एक लम्बे से गोरे मनुष्य को हाथ पांव फैलाये सोया हुआ देख कर डर गईं और चुप चाप सड़क के एक किनारे हट कर दबे पैर चली गईं।

सबेरा हुआ। बात की बात में एक अपरिचित युवा के सड़क पर सोये रहने की बात गांव भर में फैल गई। गांव के क्या छोटे क्या बड़े सभी लोग चकित हो उसे देखने गये। वह नींद में अचेत हो पड़ा था। लोगों ने उसे जगा कर परिचय पूछा। उसने उत्तर दिया—“न मेरा नाम है; न कहीं धाम है, इसी तरह भटकना मेरा काम है। मैं इस संसार में अकेला हूँ।” नरेन्द्र घोर पागल हो गया।

आठवाँ परिच्छेद ।

राजमहल ।

नरेन्द्र उसी दिन बीमार हुआ । गाँव के एक सज्जन ने उसकी सेवा-शुश्रूषा और दवा पानी का प्रबन्ध कर दिया । किन्तु बीमारी सख्त हो जाने के कारण बहुत दिनों तक तो उसके जीने की आशा न थी । पर अच्छी चिकित्सा होने से वह धीरे धीरे आरोग्यलाभ करने लगा । जब उसके शरीर में चलने की शक्ति हुई तब नरेन्द्र उस सज्जन को अनेकानेक धन्यवाद दे वहाँ से चल दिया ।

नरेन्द्र के मन में जो प्रथम शोक का उच्छ्वास और नैराश्य-जनित चिन्ता की तरङ्ग थी वह क्रमशः ठंडी पड़ गई । अब वह हेमलता के पाने की युक्ति ढूँढ़ने लगा । सोचते सोचते उसने यह बात निकाली कि पहले सूबेदार के पास जाना चाहिए और उससे अपनी ज़मींदारी पाने के लिए प्रार्थना करनी चाहिए । जब पैत्रिक सम्पत्ति मुझे मिल जायगी तब स्वार्थपरायण नवकुमार अवश्य ही अपनी लड़की का ब्याह मेरे साथ कर देगा ।

इस मतलब से नरेन्द्र सूबेदार शुजा की राजधानी में जा पहुँचे । इस जगह शुजा का कुछ परिचय दे देना हम उचित समझते हैं । शुजा दिल्ली के बादशाह शाहजहाँ के पुत्र थे । वे बङ्गदेश का सूबेदार नियुक्त होकर आये थे । उन्होंने अपनी राज-

धानी ढाके से उठा कर राजमहल में स्थापित की और बीस वर्ष तक बड़ी योग्यता से देशशासन का कार्य किया। उनके शासनकाल में सर्वत्र शान्ति छाई थी। कहीं किसी तरह का युद्ध या उपद्रव न था। प्रजागण सुख चैन से समय बिताते थे। इतिहास में शुजा की बहुत कुछ प्रशंसा पाई जाती है। वे युद्ध में जैसे पराक्रमी और साहसी थे, वैसे ही वे प्रजावत्सल, न्यायी और दयालु थे। उनकी दयालुता और न्यायपरता से क्या ज़मोदार, क्या जागीरदार, क्या कंगाल सभी खुश रहते थे और सभी उनको हृदय से चाहते थे। सुनते हैं, उनकी मृत्यु के समय वङ्गदेश के आवाल वृद्ध सभी ने उनके लिए खेद प्रकट किया था। किन्तु उनका स्वभाव इतना अच्छा होने पर भी दो एक दोषों से कलङ्कित था। युद्ध में वे जैसे ही धीर वीर थे, वैसे ही अन्य समय में वे विलासी थे। शुजा देखने में अत्यन्त सुन्दर थे, उनकी सुन्दरता ही उनके विषय-परायण का कारण हुई। वे हमेशा नाज़नख़रों से भरी हुई नई नई यौवन मदमाती नाज़नियों के बीच रहना बहुत पसन्द करते थे। इससे ललनाये वरावर उन्हें घेरे ही रहती थीं। उनकी प्रधान बेग़म प्यारी बानुरूप, गुण और चतुराई में एक ही थी। वङ्गदेश में उसका बड़ा नाम था। वह अपनी मीठी बातों और हास-विलास से सूबेदार के दिल को हमेशा अपनी मुट्ठी में लिये रहती थी और उनके हृदय को प्रेम रस से आप्लावित किये रहती थी। किन्तु इससे यह न समझना कि शुजा की केवल वही एक मात्र प्रणयभागिनी थी। प्यारी बानु के सदृश सैकड़ों बेग़मों उद्यान के फूलों की भाँति शुजा के राजमन्दिर को सुशो-

भित किये रहती थीं। उन रमणियों के रूप से विमोहित हो शुजा राजकाज भूल जाते थे। कभी कभी दो दो तीन तीन दिन तक मद्यपान करके उन रमणियों के साथ आमोद-प्रमोद में ही डूबे रहते थे।

नरेन्द्रनाथ, सूबेदार के निकट कुछ निवेदन करने के अभि-प्राय से गये तो, पर ऐसे विलासप्रिय सूबेदार से उचित विचार की प्रत्याशा करना वृथा है।

गङ्गा के किनारे सुन्दर राजमहल अब भी रौनकदार है, किन्तु जिस समय वह बङ्गदेश की राजधानी था तब उसकी शोभा ही कुछ और थी। सूबेदार का गगनस्पर्शी उच्च प्रासाद, राजपरिवार के रहने के सुविशाल भवन, अमीरों और जागीरदारों के दर्शनीय पँचखने सतखने महल, बड़े बड़े सेठ महांजनों की कोठियों से तथा धनाढ्य लोगों के नित्यप्रति के समागम से राजमहल यथार्थ ही में राजमहल था। स्वयम् गङ्गाजी हज़ारों व्यवसायियों के हज़ारों जहाज़ों को अपने स्वच्छ जलमय गम्भीर हृदय पर धारण करके नगर की शोभा और समृद्धि को बढ़ा रही थी। नगर के भीतर कितने ही आम-बाग, कितनी ही पुष्प-वाटिकायेँ थीं, जिनकी ओर एक बार दृष्टि करने से फिर दूसरी ओर दृष्टि फेरने को जी नहीं चाहता था। अत्यन्त रमणीय राजपथ पर दिन रात सैन्यगण, मुसलमान सेनापति ज़मींदार और कितने ही रईस लोग कोई घोड़े पर, कोई हाथी पर, कोई पालकी पर और कोई पैदल ही जाते आते थे। सड़क पर बराबर लोगों की भीड़ लगी ही रहती थी। व्यवसायिगण दिन रात अपने व्यवसाय में उलझे

रहते थे। कहने का मतलब यह कि राजमहल उस समय बड़ी तरक्की पर था।

तो क्या नरेन्द्र शहर की शोभा देखने के लिए गये थे ? नहीं। नरेन्द्र को शहर की सजावट से कोई मतलब न था। वे सूबेदार के निकट किस तरह अपने मन का भाव प्रकट करेंगे, इसका उपाय सोचने लगे। कितने ही धनाढ्य व्यवसायी हिन्दू नरेन्द्र के पिता को जानते थे। किन्तु नरेन्द्र अभी दरिद्र हैं, दरिद्र के लिए कौन यत्न करता है ? नरेन्द्र जिसके जिसके पास गये, सब ने यही कहा कि—“हां बाबू, तुम्हारे पिता को हम जानते हैं, वे बड़े नामी थे, उनके पुत्र को देख कर हम बहुत प्रसन्न हुए। कुछ दिन तुम यहाँ ठहरो, पीछे देखा जायगा।” वे जहाँ जहाँ गये, सर्वत्र इसी तरह की बात उनके सुनने में आई। नरेन्द्र क्या करते ? विफल प्रयत्न होकर कुछ दिन वहाँ ठहर गये। कितने एक दिनों के बाद नरेन्द्र की संयोगवश हर्फनखाँ नामक एक मुगल जागीरदार से भेंट हुई। हर्फनखाँ वीरेन्द्र का सच्चा दोस्त और यथार्थ में एक उपकारी व्यक्ति था। उसने नरेन्द्र का पूर्णरूप से सत्कार किया और उनके काम से शीघ्र सूबेदार के पास जाने की प्रतिज्ञा की। तथापि दरिद्र नरेन्द्र की इत्तिला सूबेदार के विचार-रासन तक पहुँचनी कठिन थी। अनेक युक्तिकौशल से बहुत दिनों पर हर्फनखाँ ने भाँति भाँति के बहुमूल्य उपहार से सूबेदार और उनके मन्त्रियों के मन को प्रसन्न करके नरेन्द्र की इत्तिला शुजा के सामने पेश की।

रत्नजटित सिंहासन पर सूबेदार बैठे हैं। एक तो उनका

स्वरूप आप ही सुन्दर है। उस पर राजसी लिवास से उनका सौन्दर्य और भी बढ़ रहा है। उनके चारों ओर मन्त्रीगण, बड़े बड़े ओहदेदार अफ़ग़ान और मुग़ल सैन्यगण सिर नीचा किये अदब से खड़े हैं। अन्यान्य कितने ही लोगों से वह सविस्तृत विचारालय भरा हुआ है। सिंहासन के दोनों ओर दो परिचारक चँवर डुला रहे हैं। न्यायालय के बाहर लोगों की अपार भीड़ लगी है। सूबेदार न्यायालय में कभी कभी आते थे। इस कारण आज सभी लोग उनके दर्शनार्थ आये हैं।

सूबेदार के सामने वृद्ध हर्फ़नखाँ ने खड़े हो, हाथ जोड़ कर निवेदन किया—“जहाँपनाह, इस ताबेदार ने करीब बीस बरस से हज़ूर की खिदमत में रह कर काम किया है। हज़ूर के कामों में इस ताबेदार की दाढ़ी मूँछ सफ़ेद हो गई। आज तक ताबेदार ने भूल कर भी कोई गुनाह नहीं किया है। न किसी युद्ध में आज तक पीठ दिखाई है। ताबेदार कुछ अर्ज़ करना चाहता है।”

शुजा—“हर्फ़न, तुम हमारे प्रधान सेवकों में हो। तुमको हम हृदय से चाहते हैं। तुम्हें जो कुछ कहना हो कहो। तुम्हारा कौन काम ऐसा होगा, जिसे हम पूरा न कर सकेंगे?”

हर्फ़न ने लम्बी सलाम करके फिर कहा—“जहाँपनाह, वज़्र देश के रहने वाले स्वभावतः दुर्बल होते हैं, तथापि उनमें कोई कोई पराक्रमी ज़मींदार जो हम लोगों का युद्ध में साथ देते हैं, सामर्थ्य भर सहायता करते हैं, वे हज़ूर के शुभचिन्तक और प्रीतिपात्र हैं, इसमें सन्देह नहीं। ज़मींदार वीरेन्द्रसिंह वैसे ही लोगों में से हज़र का एक खैरख़्वाह शख्स था।”

शुजा—“हाँ, मैंने उस हिन्दू का नाम सुना है, जिस समय पठानों के साथ लड़ाई छिड़ी थी, उसने युद्ध में हम लोगों की सहायता की थी।

हर्फनखाँ ने फिर तसलीम करके कहा—“जहाँपनाह ने जो कुछ फरमाया है, बहुत ठीक है। यह तावेदार जब उड़ीसा के युद्ध में गया था, तब इस तावेदार ने वीरेन्द्र का युद्ध-कौशल और राजभक्ति अपनी आँखों देखी थी। इस राजदरबार में बड़े बड़े पराक्रमी वार पठान और मुगल सैन्यगण हैं, किन्तु वीरेन्द्र से बढ़ कर साहसी और शूर पुरुष इस गुलाम ने आज तक नहीं देखा।”

सभा में जितने वीरगण खड़े थे, उनकी म्यान के भीतर तलवार भूनभूनना उठी। क्या पठान, क्या मुगल, जितने मुसलमान थे सब का मुँह लाल हो गया। किन्तु शुजा ने हँस कर कहा—“तुमने काफ़र की हद से ज्यादा तारीफ़ की, पर बात भूँठ नहीं है। वह हिन्दू हकीकत में एक दिलोर और हिम्मतवर था। हमने भी यह बात सुनी है। इस वक्त उसके बारे में क्या कहना है। कहो, हम तुम्हारे अनुरोध से जो कहोगे, उसकी भलाई करने को तैयार हैं।”

हर्फनखाँ ने गम्भीरतापूर्वक कहा—“हज़ूर क्या नहीं कर सकते? वीरेन्द्र की भलाई हज़ूर के हाथ में है। इस समय हज़ूर के सिवा दूसरे का सामर्थ्य नहीं जो उसका कुछ उपकार कर सके। मैं उसके अनाथ बालक के लिए हज़ूर में अर्ज कर रहा हूँ। बालक इस समय दरवाजे दरवाजे भीख माँगता फिरता है।

कानूनगा साहब की मेहरबानी से एक दुष्ट ने उसकी पैत्रिक ज़मींदारी हड़प कर ली है।”

सूबेदार ने भौंहें टेढ़ी करके वीरेन्द्र की ज़मींदारी के विषय में आग्रह के साथ कानूनगो से पूछा। उस समय खज़ाना और ज़मींदारी के कुल कागज़ात कानूनगो के हाथ में रहते थे। यहाँ तक कि बङ्गदेश के शासक जो कागज़ दिल्ली बादशाह के पास भेजते थे, उस पर कानूनगो की सही न रहने से वह नाजायज़ समझा जाता था। कानूनगो नवकुमार से रुपया ले चुके थे। उन्होंने विनयपूर्वक कहा—“हज़ूर से जो हुक्म होगा, ताबेदार उसी बमूजिब काम करेगा। वीरेन्द्र की मृत्यु होने पीछे कई साल तक उसकी ज़मींदारी का खज़ाना हज़ूर में न आया। तब जहाँपनाह ने वह ज़मींदारी नवकुमार को दे देने की आज्ञा दी थी। जब से नवकुमार को ज़मींदारी दी गई है तब से बराबर ठीक समय पर खज़ाने का रुपया आता है।”

शुजा इतने ही में सब बात समझ गये। कानूनगो ने जो कुछ उन्हें समझा दिया, उन्होंने उसी को ठीक मान लिया। हर्फन की प्रार्थना वहीं तक रह गई। क्रोध से उसका मस्तक झुक गया। हर्फन के दाहने भाग में नरेन्द्र खड़े थे, वे तीव्रदृष्टि से कानूनगो की तरफ ताक रहे थे।

बङ्गाल के हाकिम शाह शुजा ने हर्फनखाँ की ओर देख कर कहा—“हर्फनखाँ, देखो, सूर्य जो तेज धरती को देता है वह वापस नहीं लेता। किसी को कुछ देकर फिर छीन लेना राजधर्म नहीं है। जो ज़मींदारी खुद हम एक शख्स को दे चुके हैं वह

फिर उससे लौटा लेना राजनीति के खिलाफ होगा । वीरेन्द्र का बालक होनहार सा देख पड़ता है । यह वीरेन्द्र की भांति युद्ध करना सीखे, हम इसे जरूर अच्छा पुरस्कार और दूसरी ज़मींदारी इनाम देंगे ।”

दरबार में जितने लोग थे, सभी शुजा को धन्यवाद देने लगे । सभी ने शुजा के इस उदार वचन की प्रशंसा की । हर्फनखाँ बेचारा लाचार हो उस हुक्म को माथे चढ़ा कर उसी दिन से नरेन्द्र को अपने पास रख युद्ध की शिक्षा देने लगा ।

नवाँ परिच्छेद ।

काशी का युद्ध ।

वोक्त घटना के तीन वर्ष पीछे १६५६ ई० के आश्विन-
 पू मास के शुरू में एक दिन भारतवर्ष की राजधानी
 दिल्ली और आगरा शहर में बड़ी हलचल मच
 गई। आगरे के राजमन्दिर का द्वार लोगों से भर
 गया। समस्त नगरनिवासी भौंचक से हो रहे। दुकानें बिलकुल
 बन्द हो गईं। राजधानी के जितने लोग थे, मनसबदार, राजपूत,
 मुगल, पठान आदि सभी चञ्चल और चिन्ताकुल हैं। सभी के
 मुँह पर घबराहट और उदासी छाई हुई है। राजकाज बन्द है।
 बादशाह शाहजहाँ कई एक दिनों से रोगाक्रान्त होकर शय्यागत
 थे। आज खबर उड़ी कि वे इस दुनिया से कूच कर गये।

यह भूँठी खबर बात की बात में सारे भारतवर्ष में फैल गई।
 यह खबर सुन कर बङ्गाल से शुजा, दक्षिण देश से औरङ्गजेब और
 गुजरात से मुराद सेना साथ लेकर दिल्ली की तरफ दौड़े। बादशाह
 की मृत्यु के बाद बादशाही तख्त पर बैठने के लिए सभी व्यग्र हो
 उठे। शाही ताज सिर पर रखने के लिए सब की जीभ से राल
 टपकने लगी। पीछे जब सच्ची खबर मिली कि बादशाह अभी
 सही सलामत हैं। तब भी शाहज़ादों के मन से बादशाहत की
 तृष्णा न गई और न वे लोग आपस के लड़ाई दंगे से बाज़ आये।

कारण यह कि इसके पहले कई महीनों से बादशाह बीमारी के सबब राजकाज करने में असमर्थ हो रहे थे । उनके बड़े बेटे दारा ने इस अवसर को हाथ से न जाने दिया । उन्होंने सलतनत की सारी कार्रवाई अपने हाथ में ले ली और वे सब राजकाज करने लगे । जो उनके जी में आता वही करते, बादशाह से किसी विषय में कुछ सलाह तक न लेते थे । उनके आचरण से ऐसा जान पड़ने लगा कि वे पिता को जन्म भर के लिए क़ैद में रख कर आप सारी सलतनत पर अपनी हुकूमत चलावेंगे । कोई कोई तो यह सन्देह करने लग गये कि युवराज विषप्रयोग के द्वारा अपने सिंहासन का पथ निष्कण्टक बनावेंगे । दारा के और जितने भाई थे, वे अपने पिता के शासन से राज़ी थे, किन्तु जेठे भाई के शासन में सम्मत न थे । इसी कारण समग्र भारतवर्ष में युद्ध की आग भड़क उठी ।

१६५७ ई० के अन्त में काशी के मैदान में भयङ्कर युद्ध हुआ । मौसम जाड़े का था, दिन भर लड़ाई होती रही, साँझ होते होते युद्धक्षेत्र लोथों से भर गया । ढेर के ढेर हाथी, घोड़े, ऊँट, और मनुष्यों के मृतकलेवर पड़े हैं । चारों ओर लोहू की कीचड़ मच गई है । जिसे देख हृदय काँप उठता है । कहीं घायल सिपाही कराह रहे हैं । कहीं कोई सैनिक आसन्नमृत्यु होकर चीख खर से पानी, पानी, की रट लगा रहे हैं । कहीं दो एक योद्धा इधर उधर घूमते हुए दिखाई दे रहे हैं । वे प्रायः अपने भाई और मित्रगणों की लाश का अनुसन्धान कर रहे हैं । उन अनगिनत मुर्दों में परिचित व्यक्ति की लाश का पता लगाना सहज काम नहीं है । वे लोग यह जान कर भी मोहवश अपने प्यारे भाई

वन्धुओं को खोज रहे हैं। पर वे अब इस संसार में कहाँ मिलेंगे ? दो एक चोट्टे बहुमूल्य वस्त्र, भूषण और हथियार आदि की खोज में इधर उधर घूम रहे हैं। भुण्ड के भुण्ड शृगाल चीत्कार करते हुए रणभूमि की ओर आ रहे हैं। कहीं कहीं आग जलते देख पड़ती है। उसके प्रकाश में युद्धक्षेत्र का भीषण दृश्य दिखाई दे रहा है। वहाँ से कुछ दूर पर गङ्गा का पवित्र जल कलकल शब्द करता हुआ बह रहा है। नदी का विस्तृत हृदय अब भी वैसा ही शान्त और स्वच्छ है। वह स्वार्थी मनुष्यों के सुख-दुःख, जय या पराजय से विचलित नहीं होता। वह पूर्ववत् ज्यों का त्यों स्थिर है।

क्रमशः रात गहरी हुई। चन्द्रमा का उदय हुआ। उसकी निर्मल निष्कलङ्क किरण मनुष्यों के कलङ्क की वात प्रकट करने लगी। प्रतिद्वन्द्वी भ्रातृगण परस्पर एक दूसरे के शोणित का प्यासा होकर बेतरह युद्ध की आग को भड़का रहे हैं। गीदड़, भेड़िया, बाघ, और भालू आदि हिंसक जन्तु भी अपनी जाति के ऊपर द्रोह नहीं करते। किन्तु मनुष्य कैसा कठोर जीव है; जो अपने भाई को मार डालने के लिए युद्ध ठान कर साथ ही असंख्य मनुष्यों का विनाश कर रहा है ! चन्द्रमा के प्रकाश में दो राजपूत किसी मित्र की लाश ढूँढ़ने के लिए उस युद्धक्षेत्र में आये थे। एक जगह बहुत से मुर्दों का ढेर लगा था उसमें से कोई वेदनासूचक शब्द कर रहा था। उन दोनों राजपूत सैनिकों ने देखा, एक युवक मरने के लिए ऊपर को दम खींच रहा है और साथ ही धीरे धीरे कराह रहा है। उसके हृदय में शस्त्र की गहरी चोट लगी है। उस चोट की

जगह से लगातार लोहू बहने के कारण वह मूर्छित हो गया है । किन्तु शीघ्र उसके मरने की कोई सम्भावना नहीं है ।

युवक का चेहरा देख कर दोनों राजपूत विस्मित हुए । उस युवक की अवस्था बहुत अल्प थी । अठारह वर्ष से प्रायः अधिक न होगी । उसका सुडौल शरीर और मुख अत्यन्त सुन्दर था । उस मूर्छा की हालत में भी उसके मुँह पर वह शोभा थी जो प्रायः बहुत युवकों में नहीं पाई जाती । स्वरूप देखने से वह अभी बालक ही सा जान पड़ता था । योद्धा का कोई विशेष चिह्न उसके मुँह पर न था । बाल्यावस्था में ही वह हतभाग्य अपने देश तथा बन्धु-बान्धवों से बहुत दूर आकर आज प्राण खोने बैठा है ।

युद्ध में असंख्यात मनुष्यों को मरते देख उन दोनों राजपूत वीरों का हृदय पत्थर सा कठोर हो गया है । उनके हृदय की स्वाभाविक दया एक प्रकार से लुप्त हो चली है । वे दोनों बालक को देख कर हँस उठे और परस्पर इस प्रकार बातचीत करने लगे ।

पहला—“देखो तो, यह लड़का इसी उम्र में युद्ध करने आया था ।”

दूसरा—“मालूम होता है, यह शुजा की तरफ़ की सेना है । इस लड़के की तारीफ़ करनी चाहिए । क्योंकि यह युद्ध के खेत से एक पग भी पीछे न हटा, बल्कि हम लोगों के अड़े तक आकर इसने युद्ध किया है । मालूम नहीं, यह किस मुल्क का आदमी है ?”

पहला—“मैं नहीं जानता ।”

दूसरा—“मैं समझता हूँ, यह कोई वज्रदेशीय हिन्दू है । मुग़ल या पठान होता तो ऐसा भेष न रहता ।”

पहला (खूब जोर से हँस कर) शुजा इसी बङ्गाली बालक को लेकर महाराज जयसिंह और सुलेमान के साथ युद्ध करने आया था ? अब युद्ध करने आवेगा तो हम लोग लड़ाई में न आकर अपने बालकों को भेज देंगे । चलो, अब यहाँ बहुत देर ठहरने की ज़रूरत क्या ? जिसको ढूँढ़ने आये हैं उसको ढूँढ़ें । देखें, कहीं उसका पता लगता है या नहीं । ”

दूसरा—“यह अभी तक जीता है । थोड़ी सी सहायता से, मालूम होता है, यह बच जायगा । इसको छोड़ कर कैसे जायँ ? ”

पहला—“इस तरह दुश्मनों को बचाते फिरें तब तो हम लोगों को अपना काम करने का वक्त ही न मिले । मैं अभी इस मामले को तय कर देता हूँ । ” यह कह कर उसने म्यान से तलवार खँची ।

दूसरे ने उसे रोक कर कहा—“नहीं, नहीं, मरती हुई सेना को मारने की हमारे प्रभु महाराज यशवन्तसिंह की आज्ञा नहीं है । उन्होंने ऐसा करने का निषेध किया था । तुम जाओ, मैं इसे बचाऊँगा । ”

पहला राजपूत हँसते हँसते चला गया । दूसरे ने उसके मस्तक और आँखों पर जल छिड़क कर उसकी मूर्छा दूर की । युवा ने धीरे धीरे आँखें खोल कर देखा । चारों ओर मुर्दों का ढेर लगा है । आकाश में चन्द्रमा का उदय हुआ है । युद्ध समाप्त हो गया । लड़ाई का खेत सूना पड़ा है । युवक ने बड़ी कृतज्ञतापूर्वक पूछा—“आपने हमारी जान बचाई है । हम आपका नाम जानना चाहते हैं । जीत किसकी हुई ? शुजा कहाँ गये ? ”

राजपूत सेना ने कहा—“मेरा नाम गजपतिसिंह है । मैं महाराज यशवन्तसिंह की सेना का हूँ । इस समय महाराज जयसिंह की आज्ञा के अधीन हूँ । तुम्हारे शुजा की बात क्या कहूँ ? वह अत्यन्त विलासप्रिय है । बेगमों के वियोग से कातर होकर बङ्गदेश की ओर लौट गया । अफ़सोस !

युवक अत्यन्त क्षुब्ध होकर धरती की ओर देखने लगा । पीछे बोला—“आप हमारे शत्रुपक्ष की सेना होकर भी भाई से बढ़ कर हमारे साथ पेश आये हैं । हमारे प्राण की रक्षा की है । इस समय हमारी कुछ और सहायता कीजिए । थोड़ा सा पानी पीने को दीजिए । और ऐसी जगह में ले चलिए जहाँ हम दो एक दिन आराम से रह सकें । हमारा देश यहाँ से बहुत दूर है । यहाँ हमारा अपना कोई नहीं है । हम अनाथ की नगरी में आ पड़े हैं । इस समय आप ही एक हमारे प्राण के अवलम्ब मिल गये हैं । हमारा नाम नरेन्द्रनाथ है । जल, थोड़ा जल पिला दो ।”

नरेन्द्र की किशोर अवस्था और सुन्दर स्वरूप देख कर गजपतिसिंह के हृदय में दया का उद्रेक हो आया था । बालक का कातर वचन सुन कर उस पर उनकी ममता और भी बढ़ गई । वे उसको पानी पिला कर अपने शिविर (खेमे) में ले गये ।

दसवाँ परिच्छेद ।

राजा जयसिंह का शिविर ।



क बहुत बड़े खेमे के भीतर दो वीर बैठे हुए परस्पर बातचीत कर रहे हैं । एक तो राजा जयसिंह हैं । दूसरा उनका परम मित्र दिविरखाँ पठान है ।

राजा साहब की उमर यद्यपि युवापन की सीमा को पार कर चुकी है । तथापि उनका शरीर पहले ही का सा बलिष्ठ है । उनके मुखमण्डल पर अब भी वैसा ही तेज विराजमान है । उनके युवत्वकाल का सारा पराक्रम ज्यों का त्यों बना है ।

उन दिनों मुग़ल बादशाह के प्रधान सेनापति अधिकांशतः राजपूत थे । राजपूतों के बाहुबल के प्रताप से ही मुग़ल महोदय सिन्धु से लेकर ब्रह्मपुत्र तक समस्त भारतवर्ष का शासन कर रहे थे । जहाँ भारी विद्रोह की आशङ्का होती थी, जहाँ घेर युद्ध उपस्थित होता था, वहाँ खास कर राजपूत सेनापति भेजे जाते थे और वे प्रायः विजयलाभ करके ही आते थे । जिस समय की घटना लेकर यह उपन्यास बना है, उस समय राजपूताने की राजमण्डली में दो व्यक्ति बड़े ही चमताशाली और प्रबल पराक्रमी थे । वे दो और कोई नहीं, एक तो यही राजा जयसिंह, दूसरे राजा यशवन्तसिंह । सम्राट् शाहजहाँ इन दोनों पर पूर्ण विश्वास रखते थे

और किसी भारी बला को टालने की जब आवश्यकता पड़ती थी तब ये ही दोनों वीर चुने जाते थे । प्रबल वैरियों को दाँत खट्टे करने के हेतु युद्ध में ये ही दोनों राजपूत वीर भेजे जाते थे । वस्तुतः उस समय क्या मुगल, क्या पठान, किसी सेनापति में वह प्रताप, साहस, या युद्धकौशल न था जो महाराज जयसिंह में था । जयसिंह के समान चतुर योद्धा एक भी न था । उन दिनों एक फरासीसी विद्वान् भारतवर्ष में बहुत दिनों से था । उसने मुक्त कण्ठ से यह बात कही थी कि जयसिंह के समान कार्यदक्ष पुरुष उस समय समस्त भारत में प्रायः कोई न था । शाहजहाँ और युवराज दारा ने जब सुलेमान को सुलतान शुजा के विरुद्ध भेजा था, तब काशी के युद्ध में शुजा परास्त होकर वङ्गदेश की तरफ भाग चले ।

शिविर के भीतर खूब प्रकाश हो रहा है । बाहर पहरेदार पहरा दे रहे हैं । उस बड़े खेमे के चारों ओर और भी कितने ही खेमे हैं । उस समय राजा के शिविर में कोई न था । सिर्फ राजा और उनके प्रिय सुहृद दिविरखाँ थे । वे दोनों आपस में यों खानगी गप्प कर रहे थे ।

दिविरखाँ—“आप का जैसा नाम है, वैसा ही आप में गुण है । जहाँ आप रहेंगे, वहाँ जय होगी । आपका जयसिंह नाम बहुत ठीक है ।”

राजा जयसिंह बोले—“क्या आप आज के युद्ध की बात कह रहे हैं ? युद्ध हुआ कहाँ ? वङ्गदेश की सेना के साथ युद्ध ही क्या ? इस युद्ध को भी क्या युद्ध ही कहेंगे ?”

दिविरखाँ—“क्या आज के युद्ध में सुलतान शुजा ने साहस और वीरता नहीं दिखलाई ?”

जयसिंह—“दिखलाई क्यों नहीं ? मैं इसे स्वीकार करता हूँ । उन्होंने युद्ध के समय अपने साहस का परिचय दिया था । वे वीरता के समय विषय-विलास को एकदम भूल गये थे । इसमें सन्देह नहीं । किन्तु केवल साहस से क्या होता है । वे युद्ध करना नहीं जानते । यदि उनमें युद्धकौशल होता तो इतना शीघ्र रणभूमि से उनका पांव न उखड़ता ।”

दिविरखाँ—“शाहज़ादों में सबसे चतुर कौन है ? किस में युद्धकौशल अधिक है ? आप औरङ्गज़ेब को कैसा समझते हैं ?”

जयसिंह—“ओफ़ ! उनका नाम मत लो, वैसा चतुर, तीक्ष्ण-बुद्धि, और गम्भीर आदमी आज तक मैंने नहीं देखा । उनमें जैसी वीरता है वैसा ही युद्धकौशल भी है । सुना है, उनको रोकने के लिए राजा यशवन्तसिंह नर्मदा नदी की ओर गये हैं । यशवन्तसिंह राना के जामाता हैं । उनके योद्धा और पराक्रमी होने में सन्देह नहीं । किन्तु औरङ्गज़ेब के साथ युद्ध छिड़ने पर परिणाम क्या होगा, नहीं कह सकते । यशवन्तसिंह साहसी हैं, पर युद्ध में उतने प्रवीण नहीं हैं । मैं जहाँ तक समझता हूँ, इस भ्रातृविरोध के अन्त में औरङ्गज़ेब ही की जीत होगी ।”

दिविरखाँ—“क्या आप दारा का पक्ष न लेंगे ?”

जयसिंह—“मेरी इच्छा ऐसी नहीं है कि दारा का पक्ष न लूँ । मैं दारा को कदापि छोड़ना नहीं चाहता । किन्तु इस युद्ध के अन्त में यदि औरङ्गज़ेब की जीत होगी तो उन्हें को बादशाह

मानना होगा । हम लोग दिल्ली के बादशाह के अधीन हैं । जब जो सम्राट् (बादशाह) होंगे, तब उनकी अधीनता स्वीकार करनी ही होगी । बादशाह के विरुद्ध आचरण करना राजविद्रोहिता है । ”

दिविरखां—“अच्छा, यह तो बतलाइए, आज आप चाहते तो शुजा को सहज ही बन्दी कर लेते । शुजा जब रणक्षेत्र से भाग निकला, तब आप उसे धावा मार कर अनायास ही पकड़ सकते थे । यदि आप ऐसा करते तो युवराज दारा बहुत खुश होते । पर आपने क्यों ऐसा न किया ? ”

जयसिंह—“मैंने जानबूझ कर शुजा को छोड़ दिया और उसे भागने का मौका दिया । उसका कारण है । भाई भाई में जैसी जानी दुश्मनी चल रही है, भाई के ऊपर भाई की जैसी हिंसात्मक बुद्धि दिखाई दे रही है, उससे यही जान पड़ता है, यदि मैं शुजा को दारा के पास ले जाता तो युवराज उसे प्राणदण्ड देते या यावज्जीवन उसे कैद कर रखते । तुम्हीं कहो, क्या यह उचित होता ? दूसरी बात यह कि इस युद्ध में आने के समय बादशाह शाहजहाँ ने मुझसे कह दिया था कि जिसमें युद्ध न हो ऐसा प्रयत्न करना । शुजा की हानि हो, ऐसी उनकी इच्छा नहीं है । बादशाह के उस कथन के अनुसार मैंने सन्धिस्थापन की बात शुजा को कहला भेजी थी । शुजा भी एक प्रकार से इस बात पर राजी हुए थे । किन्तु सुलेमान ने नई जवानी के जोश में आकर अपनी बहादुरी दिखलाने के लिए अधीर होकर एकाएक गङ्गा पार होकर युद्ध आरम्भ कर दिया । ”

इस तरह की बातचीत हो रही थी। ऐसे समय में एक चौबदार ने आकर इतिला दी, “महाराज, सेनाध्यक्ष गजपतिसिंह बाहर खड़े हैं। हज़ूर में हाज़िर होना चाहते हैं।” महाराज ने आने की आज्ञा दी।

कुछ देर पीछे गजपतिसिंह आकर बोले—“महाराज ! वङ्गदेश का एक हिन्दू बन्दी हुआ है। वह अभी घायल है। उस से वङ्गदेश की बहुत सी बातों का पता लग सकता है।”

राजा जयसिंह कुछ देर सोचकर बोले—“अच्छा, अभी उसे मेरे खेमे में रहने दो।”

नरेन्द्र उसी मूर्छा की हालत में खेमे में लाया गया। पीछे जयसिंह ने गजपतिसिंह को पुकार कर कहा—“गजपति, आज युद्ध के समय तुमने हमारी बहुत सहायता की है। इस कारण हम तुमको, और तुम्हारे मालिक यशवन्तसिंह को धन्यवाद देते हैं। यशवन्तसिंह ने क्या कहने के लिए तुमको हमारे पास भेजा है ? कह सुनाओ।”

दोनों चुपके चुपके आपस में बातें करने लगे।

ग्यारहवाँ परिच्छेद ।

जलेखा ?


 रेन्द्र को ज्वरे हो गया । वह कई दिनों तक अचेतन अवस्था में पड़ा रहा । बीच बीच में जब उसे कुछ संज्ञा हो आती थी तब उसे मालूम होता था, जैसे वह नाव पर सवार हो बड़े वेग से गङ्गा के प्रवाह में चला जा रहा है । क्या वह फिर अपने देश को लौटा जा रहा है ? उसके मन में होता था जैसे एक अल्पवयस्का रमणी उसकी सेवा कर रही है । क्या फिर उसने हेमलता को पाया ? उसके नेत्रों में आंसू भर आते थे ।

कई एक दिन योंही बीते । रोग धीरे धीरे निवृत्त होने लगा । जब उसने पूर्णरूप से चैतन्यलाभ किया तब अपने को एक अपूर्व स्थान में चारपाई पर पड़ा पाया । ऐसा सुन्दर सुगन्ध घर आज तक उसने कभी न देखा था । सारा घर संगमरमर का बना है । चाँदो का मोमी शमादान सामने जल रहा है । सारा घर सुगन्ध से आमोदित हो रहा है । जिस पलङ्ग पर वह लेटा था वह हाथीदाँत का बना था, उस पर चाँदो सोने का काम किया हुआ था । सामने एक चाँदी से मढ़ी हुई तिपाई पर चाँदी का जलपात्र रक्खा है । उसकी शय्या से कुछ दूर

नीचे एक विचित्र ग़लीचा बिछा है। उस पर एक यवन-
 बालिका और एक खोजा बैठे हुए परस्पर मीठी मीठी बात
 बड़ी मुलायमियत के साथ कर रहे हैं। यवनकन्या युवती है,
 और अत्यन्त सुन्दरी है। उसका कोमल शरीर नज़ाकत से भरा
 है। नये यौवन की बहार उसके मुखमण्डल की शोभा को दूनी
 बढ़ा रही है। उसकी कमल सी आँखें और गुलाब से दोनों गालों
 की छवि न्यारी ही है। उसके सभी अङ्ग सुडौल थे। अङ्ग अङ्ग से
 शोभा बरस रही थी। हेमलता का सुभग स्वरूप नरेन्द्र के हृदय में
 अङ्कित था। किन्तु ऐसा दिव्य स्वरूप नरेन्द्र ने आज तक न देखा
 था। ऐसी रमणीय मूर्ति साक्षात् अप्सरा सी रूपवती लो उसने
 कभी न देखी थी। यवनकन्या की बोलचाल और रूप रङ्ग देखने
 ही से जान पड़ता था कि वह किसी आली खानदान की लड़की
 है। उसकी दृष्टि तेज से खाली न थी और न उसके अंग की सुकु-
 मारता अभिमान से खाली थी। वह नाज़नी एक बार शय्यागत
 हिन्दू की ओर देखती और एक बार बड़ी उदासी के साथ धरती
 की ओर निहारती थी। बीच बीच में खोजा के साथ धीमे स्वर में
 बात भी करती जाती थी। खोजा का रङ्ग काला और शरीर बलिष्ठ
 था। उन दोनों में क्या बातें हो रही थीं, नरेन्द्र कुछ न समझ
 सके। केवल दो एक बात उन्हें सुन पड़ी, जिसका आशय यह था।
 यवनबालिका कह रही थी—“मशरूर, मेरा और इस हिन्दू का
 क्यों सर्वनाश करते हो ? निर्दोषी असहाय व्यक्ति की जान लेकर
 तुम्हें क्या लाभ होगा ? क्या सुख मिलेगा ?”

मशरूर—“ज़लेखा, तुम काफ़र को यहाँ क्यों लाई ?”

ज़लेखा—“यह मेरा कसूर है, इसमें इस बेचारे का क्या दोष है ? यह तो निर्दोष है ।”

मशरूर—“इतनी जाल फैलाने की क्या ज़रूरत ? यह काफ़र तुम्हारा आशक़ तो नहीं है ?”

ज़लेखा वीरबालिका थी, उसके मुँह पर क्रोध का चिह्न दीख पड़ा । चेहरा उसका लाल हो गया । उसकी आँखों से अग्नि के कण भरने लगे । वह क्रोध से बोली—“मशरूर ! यदि तुम स्त्री होते तो जाल की बात तुम्हारी समझ में आ जाती । यदि तुम में पुरुषार्थ रहता तो तुम्हारे हृदय में दया रहती । तुम्हारे पुरुषत्व के साथ तुम्हारी दया भी लुप्त हो गई । देखती हूँ, तुम्हारा हृदय पत्थर से भी अधिक कठोर है ।”

मशरूर ने हँस कर कहा—“यह देखो, काफ़र जग पड़ा, मैं अब जाता हूँ । मशरूर चला गया ।”

ज़लेखा भी अपनी जगह से उठी और धीरे धीरे शय्या की ओर बढ़ चली । दो चार पग चल कर वह एकाएक खड़ी हो रही । धरती की ओर दृष्टि डाल वह मन ही मन कुछ सोचने लगी । फिर तुरन्त नरेन्द्र के पास आकर उसने घाव को भलीभाँति देखा । घाव अब भर आया है, ज्वर भी निवृत्त हो गया है । केवल शरीर दुर्बल है । नरेन्द्रनाथ विस्मित होकर टकटकी बाँध उसके मुँह की ओर देखने लगे । ज़लेखा का मुँह लाल हुआ । उसके सारे शरीर में बड़े वेग से खून बह चला, मानो उसकी नस नस में बिजली दौड़ गई । पहले इस आलीशान मकान और राजोचित शय्या को देख कर नरेन्द्र चकित हो रहा था । वह कहाँ आया है,

कौन उसे लाया है, कौन उसकी सेवाशुश्रूषा करता है ? उसे कुछ मालूम न हुआ । वह ज़लेखा और मशरूर की बात सुन कर डर गया था । अब ज़लेखा का आचरण देख वह और भी विस्मित हुआ । उसने पूछा—“मैं कहाँ हूँ ! क्या यह वङ्गदेश है ? तुम कौन हो, तुम्हारा क्या नाम है ?”

निस्तब्ध रात में बिना बादल के मेघ गर्जन सुन कर लोग जैसे चौंक उठते हैं, ज़लेखा नरेन्द्र के मुँह से यह प्रश्न सुन कर उसी तरह सहसा चौंक उठी । उसने नरेन्द्र के प्रश्न का कुछ उत्तर न देकर धीरे धीरे अपने ओठों पर अँगुली रक्खी ।

नरेन्द्र ने फिर कहा—“मैं असहाय अवस्था में हूँ । मैं नहीं जानता यह कैसा स्थान है ? कृपा करके कहो ?”

ज़लेखा ने इस बार उसी तरह ओठों पर अँगुली दिये मुँह फेर लिया । नरेन्द्रनाथ को जान पड़ा जैसे ज़लेखा की आँखों में आँसू भरे हों, ज़लेखा को मुँह से कुछ सुनने का सौभाग्य नरेन्द्र को न हुआ । न ज़लेखा का कुछ अभिप्राय ही उनकी समझ में आया । वे इस अपूर्व घटना की बात को सोचते सोचते फिर सो गये ।

बारहवाँ परिच्छेद ।

स्वप्न है या इन्द्रजाल ?



ई दिन बाद नरेन्द्रनाथ ने पूर्णरूप से आरोग्य लाभ किया । किन्तु शारीरिक आरोग्य होने ही से क्या होगा । उनका अन्तःकरण चिन्ता से चकनाचूर हो रहा था । जिस घर में वे थे उसमें मशरूर और ज़लेखा के सिवा कोई न आता था । न कोई कुंछ पूछता था और न किसी बात का कुछ जवाब ही देता था । मशरूर से कुछ पूछते थे तो वह हँस कर चला जाता था । ज़लेखा ओठ पर उँगली रख कर चुप हो रहती थी । पर इतना स्पष्ट मालूम होता था कि वह उनके दुःख से दुखी है और उनकी विपद से विपदापन्न है । नरेन्द्रनाथ कुछ स्थिर न कर सके कि वे कहाँ आये हैं । कभी कभी उनको वङ्गदेश में आने की आशङ्का होती थी । सुलतान शुजा नरेन्द्र को बहुत चाहते थे । तो क्या शुजा ही ने मूर्छा की हालत में नरेन्द्र को राजमहल मँगा कर अपने राजमन्दिर में रहने को जगह दी है ? हो सकता है । राज-भवन न होने से ऐसी बहुमूल्य वस्तुयें कहाँ देखने में आतीं ? किन्तु शुजा तो काशी के युद्ध में पराजित हुए थे । नरेन्द्रनाथ शस्त्राघात से मृतप्राय होकर शत्रु के हाथ पड़े थे । यह सब बात उन्हें कुछ कुछ मालूम थी । तो क्या दुश्मन आखिर उन्हें ज़लाद

के हाथ में देने ही के लिए इतनी सेवाशुश्रूषा कर रहा था ? नरेन्द्र कुछ निश्चय न कर सके ।

आधी रात का समय है । नरेन्द्रनाथ एक हाथी दाँत की बनी हुई चौकी पर बैठे हैं । सामने एक शमादान जल रहा है । नरेन्द्र गम्भीर चिन्ता में निमग्न हैं ।

कुछ देर बाद जब उनकी चिन्ता का सूत्र टूटा, एक बार सिर उठा कर उन्होंने सामने की ओर देखा । क्या देखा ? ज़लेखा चुपचाप सामने खड़ी है । ज़लेखा का मुँह पीला पड़ गया है; ओठ सूखे हैं; बाल बिखरे हैं; चेहरे पर उदासी छाई हुई है; दोनों आँखें आँसू से भरी हैं । यह देख कर नरेन्द्र विस्मित हुए । उन्होंने पूछा—“मैं आपको नहीं चीन्हता, मुझसे आप अपना अभिप्राय कह सुनावें ?”

ज़लेखा ने कुछ उत्तर न दिया । धीरे धीरे उसने आँखों के आँसू पोछ डाले ।

नरेन्द्र ने फिर कहा—“आपको देखने से ऐसा जान पड़ता है जैसे कोई विपद या भय शीघ्र आने वाला है । आप साफ़ साफ़ कह डालें, यदि उद्धार का कोई उपाय होगा तो मैं चेष्टा करूँगा ।”

ज़लेखा कुछ न बोली, आँसू पोछती हुई धीरे धीरे चली गई ।

नरेन्द्र को यह देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ । वे आधी रात को ज़लेखा के आने और चुपचाप लौट जाने का कुछ अभिप्राय न समझ सके । उनको ऐसा मालूम होने लगा कि कोई भारी सङ्कट उनके ऊपर आने वाला है । वे गाल पर हाथ रख कर सोचने

लगे। वे मन ही मन नाना प्रकार की विपत्तियों के आने का संकल्प विकल्प करने लगे।

इतने में एकाएक घर का चिराग बुझ गया। उस घोर अन्धकार में एक खोजा ने नरेन्द्र को अपने साथ चलने के लिए धीरे से उनके पास जाकर कहा। नरेन्द्र भय से चकित होकर धीरे धीरे उसके पीछे चले। दोनों चुपचाप कितने घर, कितने आंगन, और कितने दर्वाजे पार कर गये। उनकी संख्या नहीं। नरेन्द्र ने वहाँ का राजभवन देखा था। किन्तु ऐसा विचित्र महल उन्होंने आज तक कभी नहीं देखा था। कहीं संगमर्मर की चित्रविचित्र कोठरियाँ बनी हैं। जिनमें कपूर की बत्ती जल रही है। कहीं संगमर्मर का चबूतरा बना है, कहीं लाल पत्थर की सीढ़ियाँ बनी हैं। कहीं संगमर्मर के विशाल खम्भों पर नक्काशी का काम किया हुआ है। कहीं सोने चाँदी के नक्काशीदार खम्भे, और छते कारीगरी का नमूना दिखला रही हैं। ऐसी बारीक कारीगरी है कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता। कहीं उद्यान में फव्वारे का जल मोती की तरह बरस रहा है। कहीं तरह तरह के फलवान वृक्ष और कहीं फूलों के सुहावने पेड़ फूलों से लदे दीख पड़ते हैं। कहीं उद्यान के किसी पेड़ के नीचे दो एक गौराङ्गी नवयौवना वीणा बजा रही हैं। कोई नींद से सोई हुई हैं। बाहर खोजा लोग हाथ में तलवार लिये इधर उधर चुपचाप घूम रहे हैं। ठंडी हवा धीरे धीरे पेड़ों के साथ लिपट रही है। यह दृश्य देख कर नरेन्द्र अपनी विपत्ति की बात भूल गये। वे सुन्दर प्रासाद, सुन्दर घर, रमणीय उद्यान और इन अप्सराओं सरीखी सुन्दर रमणियों को देख कर चकित हुए।

बहुत देर पीछे वे एक सुवर्णजटित ऊँचे किवाड़ के निकट आ पहुँचे। वह किवाड़ एकाएक भीतर से खुल गया। नरेन्द्र ने विद्युद्दीपावली से प्रकाशमान घर में प्रवेश किया। सहसा अन्धकार से इतने तेज़ उजाले में आने के कारण उनकी दृष्टि चौंधिया गई। प्रकाश के अतिरिक्त उन्हें कुछ न सूझा। रोशनी इतनी तीव्र थी कि वे सह्य न कर सके। दोनों हाथों से उन्होंने अपनी दोनों आँखें छिपा लीं। उसी समय एक साथ सैकड़ों स्त्रियों के कोमल कण्ठ से निकली हुई हँसी का मधुर शब्द उस विशालभवन में भर गया।

नरेन्द्र को जीवन भर में कभी इस तरह के आश्चर्यजनक कौतुक से भेट न हुई थी। वे आश्चर्य में डूब गये। यह यथार्थ में सच है या स्वप्न? क्या यह सच्ची घटना है या भानमती की करामात? नरेन्द्र ने फिर आँखें खोलीं, फिर उस तेज़ रोशनी ने उनकी आँखों में चकाचौंधी पैदा कर दी, फिर उन्होंने आँखें बन्द कीं, फिर उसी तरह स्त्रियों के हँसने का शब्द सुन पड़ा।

कुछ देर बाद जब नरेन्द्र की चकाचौंध मिटी, दृष्टि स्थिर हुई तब उन्होंने जो कुछ देखा, उससे उनका आश्चर्य दसगुना अधिक बढ़ गया। उन्होंने देखा—“वे एक संगमरमर के सुविशाल सुन्दर भवन के भीतर खड़े हैं। छत से सम्बन्ध रखने वाले पत्थर के ऊँचे ऊँचे खम्भों पर रङ्ग विरङ्ग के पत्थरों से जो चित्रकारी का बारीक काम किया हुआ है वह देखते ही बन आता था, उसका वर्णन कोई कहाँ तक कर सकता है। नरेन्द्र ने वैसी चित्रकारी आज तक कहीं न देखी थी। खम्भों पर सुगन्धित

फूलों की मालायें लटक रही थीं। नीचे भाँति भाँति की सजावट की चीजें ठिकाने के साथ रक्खी थीं। जितनी स्त्रियाँ थीं, सभी के गले में फूल माला सुशोभित थी। फूलों के सुगन्ध से सारा घर आमोदित हो रहा था। रङ्ग विरङ्ग की सीसक-निर्मित दीपावली की ज्योति से एक अपूर्व ही शोभा प्रकट हो रही थी। कतार बाँध कर भूषणवस्त्र से सुसज्जित एक सौ स्त्रियाँ खड़ी हैं। उनके बीच में चमचमाते हुए रत्नजटित सिंहासन पर उन स्त्रियों की स्वामिनी बैठी है। नरेन्द्र देख कर दंग हो रहे। यह स्वप्न है या इन्द्रजाल? कुछ उनकी समझ में न आया। वे इस विस्मयकारी दृश्य को जागृत अवस्था में देख रहे हैं या स्वप्न में, इसका भी वे निर्णय नहीं कर सके। नरेन्द्र ने अलफ़लैला में पढ़ा था कि अबुल हसन नाम का एक दरिद्र व्यक्ति एक दिन सो कर उठा तो उसे जान पड़ा जैसे वह बग़दाद का खलीफ़ा बन गया हो! नरेन्द्र का यह स्वप्न उसकी अपेक्षा भी अधिक विस्मयकारी है। मानो उन्होंने अपने को एकाएक स्वर्गीय उद्यान में अप्सराओं से घिरा देखा।

नरेन्द्र ने पलक उठा कर एक बार उन रमणियों की पंक्ति की ओर देखा। वे सब बाँधदब चुपचाप खड़ी हैं। सभी दोनों हाथ अपनी अपनी छाती पर रखे धरती की ओर निहार रही हैं। उनको देखने से यही जान पड़ता था जैसे वे सब के सब पत्थर की पुतलियाँ हों। उनकी केशराशि में गुँथे हुए हीरे-मोतियों की चमक से रौशनी मलिन हो रही थी। जड़ाऊ भूषण-वस्त्रों की चमचमाहट उस दीपावली के उजाले में और भी अधिक

बढ़ रही थी। वे सब स्त्रियाँ मानो अपनी स्वामिनी की आज्ञा की आज्ञा से चुपचाप खड़ी थीं।

नरेन्द्र ने जब सिंहासन पर बैठी हुई स्त्री की ओर देखा तब तो उनके आश्चर्य की सीमा न रही। उसकी चमकदमक, ठाटवाट सबसे चढ़ा बढ़ा था। यद्यपि उसकी उम्र जवानी से उतर चुकी है तथापि यौवन की श्रुति उसके शरीर में अब तक बनी है। उसका मुँह देख कर कोई यह न कहेगा कि यह युवती नहीं है। मानो उसके अंग अंग में अब भी यौवन का मद भरा है। अब भी वह युवापन के अभिमान को अपने ऊपर लिये हुए है। साथ ही रोवदार चेहरे से एक प्रकार का तेज निकल रहा है। इस सिंहासनस्थ रमणी को हम यहाँ से बेगम करके लिखेंगे। बेगम का कद लम्बासा और सुडौल था, दोनों हाँठ विद्रुम से लाल थे। उसके भौंरे से काले बालों से गुँथे हुए हीरे-मोतियों की ज्योति जगमगा रही थी। मलमल के घूँघट में वह अपने मुखचन्द्र के प्रकाश को नहीं छिपा सकती थी। उसे देख कर कोई यह नहीं कह सकता कि वह स्वर्ग की अप्सरा नहीं है। स्वर्ग की अप्सरा हो, चाहे मानवी, पर भी वह कोई अवश्य असाधारण स्त्री।

किन्तु नरेन्द्र को यह सब स्थिर होकर देखने का अवसर कहाँ? बेगम को अभी तक उन्होंने भली भाँति देखने भी नहीं पाया, इतने में स्वर्गीय संगीत की वाद्य-ध्वनि उनके कानों में प्रविष्ट होने लगी। उसके साथ उन सैकड़ों स्त्रियों का कण्ठस्वर भी जा मिला। ऐसा मनोहर गान आज तक नरेन्द्र ने कभी नहीं सुना था। उनका सारा शरीर रोमाञ्चित हो उठा। वे चित्रवत् खड़े

हो गीत सुनने लगे । गाने का रंग धीरे धीरे जमने लगा । धीरे धीरे तान की मात्रा भी बढ़ने लगी । मानो वह तान उस विशाल भवन को अतिक्रम करके आकाशमण्डल में फैलने लगी । फिर धीरे धीरे तान की तरंग घटने लगी और अन्त में एकदम विलीन हो गई । फिर तान शुरू हुई, फिर धीरे धीरे लय हुई । इसी तरह दो तीन बार संगीत की अपूर्व ध्वनि सुन पड़ी ।

वेगम ने जोर से धरती पर पैर पटका, तुरन्त प्रासाद की एक ओर लाल रङ्ग की यवनिका नीचे गिरी । नरेन्द्र ने सचकित दृष्टि से देखा कि पर्दे के बाहर चार खोजे काले कलूटे, लाल रङ्ग का कपड़ा पहने, हाथ में खंजर लिये खड़े हैं । वेगम ने फिर धरती पर पद-प्रहार किया, यह देख उन खोजों में जो प्रधान था, भट वेगम के सिंहासन के पास जा खड़ा हुआ । नरेन्द्र ने उसे पहचाना । वह मशरूर था । मशरूर को देखते ही नरेन्द्र का प्राण सूख गया । काटो तो बदन में खन नहीं । मशरूर बड़ी मुलायमियत के साथ धीमे स्वर में वेगम से कुछ रहस्य की बात कहने लगा । वह इतना मन्द मन्द बोल रहा था कि नरेन्द्र कुछ न सुन सके । किन्तु उन्होंने इतना ज़रूर समझा कि वह उन्हीं के सम्बन्ध में कुछ कह रहा है । क्योंकि बात करते समय बीच बीच में वह नरेन्द्र की ओर उँगली दिखलाता था और बीच बीच में आँखें लाल कर दाँत पीसता हुआ क्रोध का भाव व्यक्त करता था । मशरूर क्या कह रहा था, यह तो नरेन्द्र नहीं जान सके, किन्तु उसका सङ्केत और आकृति देख कर नरेन्द्र का हृदय कांपने लगा । उनके जी में इस बात का निश्चय

होने लगा कि वे इस अज्ञात देश में बधिकों के हाथ में पड़ कर प्राण खोवेंगे ।

वेगम ने फिर पैर से ज़मीन को ठुकराया । तुरन्त उस घर में दूसरी तरफ़ हरे रंग का पर्दा गिरा । पर्दे के बाहर हरे रंग की पोशाक पहने चार फ़र्मावरदार औरतें आ खड़ी हुईं । वेगम के पैर का इशारा पाते ही वे चारों स्त्रियाँ एक बन्दी को वेगम के पास पकड़ कर ले आईं । नरेन्द्र उसे देख कर बड़े अचम्भे में आये । वह और कोई न था । बन्दी के रूप में वही ज़लोखा थी ।

ज़लोखा ने क्या कहा, यह नरेन्द्र के कानों तक न पहुँचा । किन्तु उसके इङ्गित आकार से मालूम होता था कि वह वेगम से क्षमा की प्रार्थना कर रही है और आँसू बहाती हुई वेगम के पैरों पर लोट रही है ।

वेगम ने बार बार नरेन्द्र की ओर देखा । नरेन्द्र की कान्ति स्वभावतः तपाये हुए सोने की सी थी । नेत्र बहुत बड़े बड़े थे । ललाट ऊँचा और चौड़ा था । चेहरे पर तेज की झलक थी । वेगम उस नवीन सुन्दर युवा के उन्नत ललाट और सुन्दर मुँह की ओर बार बार देखने लगी ।

नरेन्द्र की ओर बहुत देर तक बारंबार देखते देखते वेगम को उनके हाथ में एक अँगूठी देख पड़ी । हतभागिनी ज़लोखा ने नरेन्द्र की बीमारी की हालत में एक दिन अपनी अँगूठी उसकी उँगली में पहना दी थी । तब से वह उसकी उँगली में थी । वेगम की लौंडियों ने उस अँगूठी को पहचाना, वेगम ने स्वयं उसे चीन्हा । नरेन्द्र की उँगली में ज़लोखा की अँगूठी देख कर वेगम का क्रोध-

नल और भी प्रदीप्त हो उठा। क्रोध से उनका चेहरा लाल हो गया। आँखों से अग्नि के कण भरने लगे।

कुछ देर में दोनों अपराधियों के दण्ड का फैसला हो गया। कठोर हृदया बेगम ने हुक्म दिया—“ज़लेखा अपराधिनी है। इस पापिनी को शूली दे। काफ़िर को यहाँ से ले जाओ। हाथी के पाँव से कुचलवा कर इसकी जान लो।”

यह हुक्म देकर बेगम उठ गई। जितनी दीपावली बल रही थी एक साथ बुझ गई। खोजागण उस अँधेरे में चुप चाप नरेन्द्र के हाथ पाँव बाँधने लगे।

उस घोर अन्धकार में न मालूम किसने नरेन्द्र के मुँह के सामने एक गिलास रक्खा। नरेन्द्र का कण्ठ मारे प्यास के सूख रहा था। उद्वेग, आश्चर्य और भय से उसके हृदय में आग सी लग रही थी। उसने बड़े चाव से पानी पिया। परन्तु पानी पीने के साथ वह बेहोश हो गया। पीछे क्या हुआ, उसने कुछ न जाना। केवल उसे इतना जान पड़ा, जैसे उस अन्धकार में किसी ने उसके हाथ से अँगूठी काढ़ ली, और उसके कानों में किसी के रोने का शब्द सुन पड़ा। मानो उसने स्वप्न में देखा कि वह रोने वाली अभागिनी ज़लेखा थी।

नरेन्द्रनाथ का जब निद्राभंग हुआ तब उन्होंने देखा, सूर्योदय हो चुका है। वे बाज़ार में एक पर्णकुटी के निकट सोये हैं। सूर्य की प्रातःकालिक किरण उनके मुँह पर पड़ रही है। घाट, बाट, नगर, बस्ती, महल, अटारी आदि सभी सूर्य के प्रकाश में स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं। नरेन्द्र इस अपूर्व स्थान को देख कुछ निर्णय

न कर सके कि वे कहाँ हैं ? उनके मन में भाँति भाँति की चिन्ताये' होने लगीं । अनेक प्रकार की आशङ्काये' उनके चित्त को डावाँडोल करने लगीं । वे सोचने लगे, क्या यह वङ्गदेश की राजधनी राजमहल तो नहीं है ? क्या सुलतान शुजा अनुग्रह करके उन्हें काशी के रणक्षेत्र से यहाँ ले आये हैं । क्या गत रात्रि में उन्होंने इसी जगह धरती पर सो कर उस विचित्र राजमन्दिर और बेगम का स्वप्न देखा था ?

तेरहवाँ परिच्छेद ।

गजपतिसिंह ।



नरेन्द्र के आश्रय की सीमा न रही । उस स्थान को इसके पहले उन्होंने कभी नहीं देखा था । वह स्थान उन्हें एक अतिथिशाला की तरह दीख पड़ा । बीच में मैदान और उसके चारों ओर दो महला मकान है । जिसमें अनेक कोठरियाँ हैं । हरेक कोठरी में दो एक आदमी देख पड़ते हैं । उनमें अधिकांश लोग व्यवसायी थे । बड़े बड़े सम्भ्रान्त पारसी, पठान, या हिन्दू जो पहले पहल उस शहर में आते थे, वे पहले उसी धर्मशाला में उतरते थे । रात में धर्मशाला का फाटक बन्द हो जाता था । इस समय सबेरा हुआ जान फिर फाटक खुला, लोग धर्मशाला के बाहर भीतर आने जाने लगे ।

एक फ़ारस देश का बूढ़ा मुसलमान कोठरी में बैठा हुआ हुक्का पी रहा था । नरेन्द्र ने उससे जाकर पूछा—“शेख़ साहब, यह कौन शहर है ? मैं यहाँ पहले पहल आया हूँ । इसी से यहाँ का हाल मुझे कुछ मालूम नहीं है ।”

शेख़ साहब ने कहा—“बच्चा, हम भी वाणिज्य की इच्छा से कल ही यहाँ आये हैं । शहर का विशेष हाल हम भी कुछ नहीं जानते ।”

नरेन्द्र—“तो भी आप मुझसे ज़रूर कुछ ज्यादा जानते होंगे। यहाँ का कुछ हाल मेहरबानी करके मुझसे कहिए।”

शेख—“हम सच ही सच तुमसे कह रहे हैं, इस शहर का कुछ भी हाल हम नहीं जानते। हमने इतना ही सुना है कि यह बेगम साहबा का मुसाफिरखाना है। बादशाह की बड़ी लड़की ने शहर के नये आगन्तुकों के आराम से रहने के लिए यह अतिथिशाला बनवा दी है। हमने समरकन्द, बोखारा, सिराज़ और इस्फहान आदि अनेक शहर देखे हैं, मगर ऐसा दिलचस्प सुन्दर शहर आज तक नहीं देखा था।”

नरेन्द्र—“इस शहर का नाम क्या है? शाहज़ादो कौन है? कहाँ रहती है? आप जानते हों तो बता दें।”

बूढ़े सौदागर ने बड़ी देर तक स्थिर दृष्टि से नरेन्द्र के मुँह की ओर देखा, और नौकर को पुकार कर कहा—“देखता हूँ यह काफ़िर भारी बेवकूफ़ है। इस पगले को यहाँ से भगा दो, कौन जाने पागलपन ज्यादा चढ़ जाने से किस घड़ी क्या कर बैठे?”

नरेन्द्र उसका ऐसा कठोर भाषण सुन कर स्वयम् वहाँ से हट गये। कुछ देर पीछे उन्होंने देखा, एक पठान जाति की औरत टोकरी में कुछ फल फूल इत्यादि खाने की वस्तु लिये धनी व्यापारियों के पास बेचने को जा रही है। नरेन्द्र ने भट उसको पास जाकर पूछा—“बीबी, इस शहर का नाम क्या है? इस जगह को लोग क्या कहते हैं?”

वृद्धा चकित होकर नरेन्द्र की ओर ताकने लगी। कुछ देर

ठहर कर बोली—“मैं तुम्हारे पूछने का मतलब समझ गई । मेरी अब वह उमर नहीं । तुम हमसे दिल्लगी उड़ाने आये हो । जाओ, जाओ, कहीं दूसरी जगह जाकर दिल का अरमान पूरा करो । ऐसा खूबसूरत चेहरा देख कर तुम पर कितनी ही रण्डियाँ लट्ठ होंगी ।”

नरेन्द्र को फिर उससे कुछ पूछने का साहस न हुआ । उन्होंने देखा, सामने एक राजपूत सैनिक खड़ा है । एक नौकर उसके घोड़े की सेवा कर रहा है, सैनिक हर्वे हथियार से लैस हो नौकर को बार बार ताकीद कर रहा है कि वह शीघ्र घोड़े को खिला पिला कर तैयार करे । नरेन्द्र ने उस सैनिक से पूछा—“मैं यहाँ नया आया हूँ । इस शहर का नाम क्या है, नहीं जानता । मालूम होता है आप यहाँ बहुत दिनों से हैं । क्या इस शहर का कुछ हाल मुझे सुना सकते हैं ?”

राजपूत सैनिक ने बहुत देर तक नरेन्द्र की ओर ध्यानपूर्वक देख कर कहा—“शायद हमने कहीं तुम्हें देखा है । तुम बंगाल से आये हो न ? हाँ, अब स्मरण हुआ । शायद इस अरसे में तुम हमें भूल गये ।”

तब नरेन्द्र ने उसके मुँह की ओर ध्यान से देखा, नरेन्द्र को धक से याद हो आई, बोले —“नहीं, नहीं मैं नहीं भूलता हूँ गजपतिसिंह ! काशी का युद्ध होने के बाद आप ही ने मेरी जान बचाई थी । मैं जब तक जीता रहूँगा, कभी आपको नहीं भूल सकता ।”

दोनों में बहुत देर तक बातें हुईं । अब नरेन्द्र ने जाना कि

यह शहर हिन्दुस्तान की प्रसिद्ध राजधानी दिल्ली है। बात ही बात में गजपतिसिंह ने नरेन्द्र से कहा—“हम महाराज जयसिंह से विदा हो, उनकी दी हुई कुछ चिट्ठी वगैरा लेकर महाराज यशवन्तसिंह के पास जा रहे हैं। वे अभी उज्जैन में औरङ्गजेब से युद्ध करने गये हैं। हम युद्ध होने के पहले ही वहाँ पहुँच जायँ तो बड़ा अच्छा हो। तुम्हारी इच्छा हो तो हमारे साथ चलो। हम महाराज से निवेदन करके तुम्हें घुड़सवार का काम दिलादेंगे।” नरेन्द्र वहाँ अपने को बन्धुहीन और द्रव्यहीन देख कर उनके साथ जाने में राजी हुए। तदनन्तर दोनों दिल्ली शहर देखने के लिए निकले।

महाभारत में वर्णित इन्द्रप्रस्थ नगर जहाँ था; भारतवर्ष का अन्तिम सम्राट् पृथ्वीराज की राजधानी दिल्ली नगर जिस जगह बसा था; जब की यह आख्यायिका है, उसके कई एक वर्ष पूर्व बादशाह शाहजहाँ ने वहाँ नई राजधानी स्थापित करके अच्छी अच्छी इमारतें और क़िला बनवा कर नगर का नाम शाहजहानाबाद रक्खा। किन्तु इस नाम का प्रचार न हुआ। शाहजहानाबाद दिल्ली का नाम है यह प्रायः कोई नहीं जानता, अब भी शाहजहाँ का बसाया हुआ शहर दिल्ली के नाम से मशहूर है। पृथ्वीराज के समय का रक्खा हुआ हिन्दू नाम अब तक कायम है। बदला नहीं।

दिल्ली के एक तरफ़ यमुना नदी है और तीन तरफ़ क़िले की धनुषाकार दीवालें खड़ी हैं। दीवाल बहुत ऊँची है। उस पर से लोगों के जाने आने का एक रास्ता बना था। यमुना और इस

दीवाल के भीतर दिल्ली शहर बसा था; किन्तु दीवाल के बाहर भी तीन चार बड़े बड़े महल्ले थे । जिनमें अमीर उमरा, धनी महाजन और हिन्दू राजाओं के कितने ही ऊँचे ऊँचे महल और बाग़ दूर ही से नज़र आते थे । शहर के भीतर यमुना नदी के समीप एक, पत्थर का छोटा सा, पर मज़बूत क़िला बना था । उसके भीतर बादशाह का प्रासाद निर्मित था, संगमरमर की बनी हुई भाँति भाँति की बृहत् अट्टालिकायें अपनी शोभा और सम्पत्ति से इन्द्रभवन को लजा रही थीं ।

गजपतिसिंह और नरेन्द्र दोनों दिल्ली के एक प्रधान रास्ते से क़िले की ओर जाने लगे । उस समय दिल्ली पलटनों से भरी थी । पैंतीस हज़ार सेना बराबर दिल्ली शहर के भीतर निवास करती थी । सैन्यगणों के पुत्र, कलत्र और नौकर आदि कितने ही लोग दिल्ली में मिट्टी और फूँस के घरों में रहते थे । इस लिए शहर विशेष कर ऐसे ही तृणकुटीरों से परिपूर्ण था । जिधर देखिए उधर अधिकांश तृणशाला ही देख पड़ती थी । चावल, दाल और कपड़े आदि की जितनी दूकानें थीं, उनमें भी अधिकांश फूँस के ही घर थे । कोई साल ऐसा नहीं जिसमें दो एक बार उस महल्ले में आग न लगती हो । साल के साल हज़ारों तृणागार क्षण भर में जल कर खाक हो जाते थे । लाखों की पूँजी नष्ट हो जाती थी । नरेन्द्र सड़क के दोनों किनारे बहुधा ऐसे ही कच्चे घरों को देखते हुए जाने लगे । मार्ग में छोटी छोटी दूकानों में तरह तरह की चीज़ें विक रही थीं । सड़क पर लोगों की अपार भीड़ लगी थी । उसमें साधारण लोगों की ही संख्या अधिक थी ।

वे लोग सामान्य भेष से अपने अपने काम पर जा रहे थे। उस समय मध्य श्रेणी के व्यवसायी और अन्यान्य लोग जिस तरह ईंट के मकान बना कर शहर को शोभायमान कर रहे थे, दो सौ वर्ष पूर्व यह बात न थी। तब और ही तरह के घरों से दिल्ली सुशोभित थी।

कुछ दूर आगे बढ़ कर वे दोनों एक बहुत विस्तृत राजपथ पर जा पड़े। उस पथ के दोनों तरफ एक से एक बढ़ कर आलौ-शान मकान देखने में आये। मनसबदार, काज़ी, अमीर, उमरा, सेठ, महाजन और राजा महाराजा आदि बड़े बड़े धनाढ्य लोगों के अत्यन्त सुन्दर महल और अटारियों से राजपथ की शोभा सौगुनी बढ़ रही थी। नरेन्द्र ने ऐसी सजी हुई सुन्दर श्रेणीबद्ध अटारियाँ आज तक नहीं देखी थीं। अतएव वे उनके कोठों की शोभा देख कर दङ्ग हो रहे। वे दो एक पग आगे चलते, फिर खड़े हो मकान की शोभा देखने लग जाते, इसी तरह मकान की शोभा देखते और गजपतिसिंह के साथ वार्तालाप करते हुए जाने लगे।

कुछ देर बाद उन दोनों की नज़र प्रसिद्ध जुम्मा मसजिद के ऊपर पड़ी। भारतवर्ष में ऐसी एक भी मसजिद और न थी। भारतवर्ष ही क्या, दुनिया भर में भी शायद उसके जोड़ की मसजिद न थी। नरेन्द्रनाथ ने चकित होकर पूछा—“सामने यह कैसी मसजिद नज़र आती है ?”

गजपतिसिंह—“यह जुम्मा मसजिद है। सुना है, एक पहाड़ के ऊपरी हिस्से को समतल करके उसी पर यह मसजिद बनाई गई

है । यह बिलकुल बेशकीमत लाल पत्थर की बनी है, इसके ऊपर सङ्गमरमर के अत्यन्त सुन्दर तीन गुम्बज़ आकाश से बाते कर रहे हैं । बादशाह जब दिल्ली में रहते हैं तब वे प्रति शुक्रवार को इस मसजिद में नमाज़ पढ़ने आते हैं । बादशाह की सवारी जिस ठाट बाट से निकलती है वह तो तुमने कभी देखी ही नहीं । देखोगे तो ज़िन्दगी भर न भूलोगे । क़िले से मसजिद तक चार पाँच सौ सिपाही क़तारबन्दो से खड़े होते हैं । उनके एक हाथ में बन्दूक और दूसरे हाथ में लाल रङ्ग की पताका फहराती रहती है । पाँच छः सवार बराबर राजपथ की देख भाल के लिए आगे निकलते हैं, पीछे बड़ी धूमधाम से गाजे बाजे के साथ बादशाह, रत्नजटित सोने की अम्बारी से सजे हुए हाथी पर सवार हो, बाहर निकलते हैं । उसके पीछे मुसाहब, मनसबदार मुसलमान सजधज कर मसजिद को जाते हैं । किन्तु अब यहाँ देर तक रहने से क्या होगा ? चलो, क़िले के भीतर चल कर बादशाह की इमारत देखें ।”

दूर ही से लाल पत्थर के बने हुए ऊँचे क़िले की अपूर्व शोभा देख कर नरेन्द्र का चित्त चकित हुआ । उस समय अन्यदेशीय जो लोग भारतवर्ष में आये उन लोगों ने दिल्ली के क़िले, बादशाही इमारतों, और संगमरमर की मसजिद को संसार में अद्वितीय कह कर वर्णन किया है । क़िले के फाटक के सामने एक बहुत बड़ा मैदान था, उस में एक हिन्दू राजा डेरा डाले क़िले के द्वार की निगरानी कर रहे थे । घुड़सवार और मुसाहब लोग इधर उधर घूम फिर रहे थे । कितने ही सिपाही क़िले से बाहर जा रहे थे

और कितने ही बाहर से किले के भीतर आ रहे थे । विदेशीय व्यवसायिगण अपना अपना सौदा लेकर किले के फाटक पर जमा हो रहे थे और भी हजारों आदमी इधर उधर जाते आते दिखाई दे रहे थे ।

फाटक के दोनों तरफ, पत्थर के हाथी की दो मूर्तियाँ थीं । उन पर दो मनुष्यों की प्रतिमूर्तियाँ सवार थीं । नरेन्द्र ने बड़ी उत्सुकता के साथ पूछा—“यह किसकी मूर्ति है ?”

गजपतिसिंह—“तुम हिन्दू हो, तुम इन्हें नहीं पहचानते ? ये दोनों राजपूत वीर-पुरुषों की मूर्तियाँ हैं । चित्तौर के जयमल्ल और पत्तू ने बादशाह अकबर के साथ युद्ध करके उस किले की रक्षा की थी । पीछे जब लड़ते लड़ते थक गये तब अधीनता स्वीकार न करके युद्ध में बड़ी बहादुरी दिखा कर हत हुए । हमारे पितामह तिलकसिंह भी उसी युद्ध में मारे गये । हम उस युद्ध की कहानी बाल्यावस्था में पिता तेजसिंह के मुँह से सुना करते थे । पत्तू की माँ और पत्नी वीर-रमणी थीं, वे दोनों भी सम्मुख युद्ध में मारी गईं । उन लोगों की कीर्ति चिरस्मरणीय करने के लिए बादशाह अकबरशाह ने ये दोनों मूर्तियाँ इस जगह स्थापित की थीं । “कुछ देर ठहर कर फिर वे बड़े गर्व के साथ बोले—“सच पूछो तो राजपूत राजाओं की कीर्ति चिरस्मरणीय रखने के लिए उनकी मूर्तियों की आवश्यकता नहीं, क्योंकि जितने दिन उनकी वीरता का गौरव रहेगा, उतने दिन राजपूतों की कीर्ति का लोप न होगा । राजपूताने के हरेक पहाड़ की चोटी पर राजपूतों की वीरता का यश छाया हुआ है । भारतवर्ष की प्रत्येक

समुद्रवाहिनी नदी को तरङ्ग में राजपूतों के वीरत्व निनादित हो रहे हैं।”

इस प्रकार बातचीत करते हुए दोनों प्रधान पथ का अतिक्रमण कर क़िले में आये। इस पत्थर के क़िले के भीतर उन्होंने देखा—
“सड़क के दोनों किनारे बड़ी बड़ी अट्टालिकायें हैं। जिनमें राजकर्मचारिगण काम कर रहे हैं। क़िले के बाहर फाटक के सामने जिस तरह हिन्दू राजगण क़िले की रक्षा कर रहे थे, उसी तरह क़िले के भीतर भी मनसबदार प्रभृति द्वार की रक्षा कर रहे थे।

क़िले के भीतर नरेन्द्र और गजपतिसिंह ने बड़े बड़े कारख़ाने देखे। राजा-महाराजों को जिन सब विचित्र वस्तुओं की आवश्यकता होती थी, वे सब चीज़ें उन कारख़ानों में बनती थीं। कहीं रेशम तैयार होते थे। कहीं भाँति भाँति के भूषण बन रहे थे। कहीं तस्वीरें और पत्थर की मूर्तियाँ बन रही थीं। इसी तरह छाते, जूते आदि के अनेक कारख़ाने थे। भाँति भाँति के देशी कपड़ों के व्यवसाय वालों के कारख़ाने अलग ही थे। दरज़ी लोगों की सिलाई का कारख़ाना अलग ही था। कहने का मतलब यह कि उस समय देशोपयोगी कोई चीज़ ऐसी न थी जिसका कारख़ाना दिल्ली में न रहा हो। देश के जितने अच्छे अच्छे कारीगर थे वे लोग सबेरे से साँझ तक प्रतिदिन कारख़ानों में काम करते थे और पूरी तनख़्वाह पाते थे। इससे दिल्ली में उस समय अच्छा अच्छी चीज़ें तैयार होती थीं और व्यवसाय दिन दिन उन्नति पर था।

उन सब कारखानों को देखते हुए वे दोनों वहाँ जा पहुँचे जहाँ संगमरमर का बना हुआ जगत्प्रसिद्ध प्रासाद “दीवानेखास” था। उस प्रासाद की छत सोने से विभूषित थी और सूर्य की किरणों में झकाझक कर रही थी। प्रासाद के भीतर रत्नजटित स्वर्णसिंहासन के ऊपर बादशाह शाहजहाँ बैठे हैं। उनके चेहरे पर अब भी बीमारी का चिह्न कुछ कुछ दिखाई दे रहा है। उन्होंने अभी तक सम्पूर्ण रूप से आरोग्यलाभ नहीं किया है। उनके सिंहासन की दाहिनी ओर युवराज दारा बैठे हैं। उनका चेहरा रोब से भरा है। देखने में वे अत्यन्त सुन्दर हैं। बादशाह की बाईं ओर उनके पौत्र (दारा के बेटा) सुलतान सुलेमान खड़े हैं। उनकी उम्र करीब पच्चीस वर्ष की होगी। कद लम्बा है। बादशाह के पीछे छत्रधारी छत्र लिये खड़े हैं। सिंहासन के दोनों ओर दो आदमी चँवर डुला रहे हैं। सिंहासन के चारों ओर चाँदी की छड़ों का घेरा था। उस घेरे के बाहर राजा, मुसाहब, मनसबदार, सेनापति और भारतवर्ष के प्रधान प्रधान लोग शाही दरबार के उचित कपड़े पहने, हाथ जोड़े, धरती की ओर नज़र किये हुए खड़े थे। उससे कुछ दूर सामने की समतल भूमि ठसाठस लोगों से भरी थी। क्या अमीर, क्या ग़रीब, क्या हिन्दू, क्या मुसलमान वहाँ जाकर बादशाह के दर्शन करने का अधिकार सभी को था। उस अनुपम प्रासाद के सदर फाटक के ऊपर यह यथार्थ ही लिखा था कि—“यदि भूमण्डल में स्वर्ग है तो यही स्वर्ग है, यही स्वर्ग है, यही स्वर्ग है।”

बादशाह के सामने सबके पहले सुन्दर सुन्दर अरबी घोड़े

लाये गये। बादशाह देख कर खुश हुए और उन्हें ले जाने की आज्ञा दी। तदनन्तर बड़े बड़े दन्तुल हाथी बादशाह को दिखलाने के लिए लाये गये। वे हाथी सूँढ़ उठा कर बादशाह को तसलीम करके चले गये। तिस के बाद क्रमशः हिरन, बैल, भैंस, गैंडे, और बाघ आदि अनेक पशु दिखलाये गये। भाँति भाँति के पक्षिगण और साथही उनके चमत्कार भी बादशाह ने देखे। इसके बाद हाथ में बर्छा लिये घुड़सवार सेनागण, उनके पश्चात् कई सौ सुशिक्षित पैदल सैन्यगण बादशाह के सम्मुख से होकर चले गये। उन लोगों की वीरता के मद से भरी हुई चाल से धरती काँप उठी।

प्रदर्शिनी समाप्त होने के पीछे बादशाह लोगों की दरखास्त लेने लगे। क्या छोटे, क्या बड़े सभी लोग भारतवर्ष के बादशाह शाहजहाँ के निकट आकर अपना अपना दुःख सुनाने लगे। बादशाह उन लोगों की दरखास्त पर मुनासिब हुक्म देने और प्रार्थियों का दुःख दूर करने लगे। बादशाह ने जिस विषय पर जो राय जाहिर की उसे जितने सभासद् थे सभी ने सराहा और बादशाह की न्यायपरता पर धन्यवाद दिया।

दो घंटे में राजसम्बन्धी काम खतम हो गया। दरबार बरखास्त हुआ। बादशाह, शाहज़ादा और प्रधान प्रधान मुसाहबों को साथ ले गुसुलखाने को गये। गुसुलखाना केवल हाथ मुँह धोने ही के लिए न था। वहाँ प्रधान प्रधान मन्त्रियों के साथ बैठकर बादशाह राजसम्बन्धी विषयों पर गुप्त विचार करते थे। नरेन्द्र ने गुसुलखाने के पीछे की ऊँची दीवार देखी। उस

दीवार के भीतर बहुत से बड़े बड़े आलीशान मकान हैं । गज-पतिसिंह ने कहा—“इस दीवार के दूसरी तरफ़ बेगमों के रहने के लिए अलग अलग महल बने हैं । सुना है, उन सब महलों में बड़ी विचित्रता है । सभी महल कारीगरी के नमूनों से भरे हैं । हरेक बेगम का महल संगमरमर का बना है । जिसके चारों ओर उपवाटिका लगी है । उस वाटिका में कहीं कहीं उपवन और लताभवन की शोभा चित्त को चुराये लेती है । गरमी के मौसम में दिन को रहने के लिए कई एक सुन्दर तहखाने बने हैं और रात को सोने के लिए छत के ऊपर खसखस की कोठरी बनी है । किन्तु बादशाह के सिवा अन्तःपुर की शोभा देखने का सौभाग्य दूसरे पुरुष का कहाँ । अन्य पुरुषों के अन्तःपुर में प्रवेश का पूरा निषेध था । किसकी मज़ाल जो अन्तःपुर की ओर एक बार भाँके भी भीतर पैर रखना तो दूर की बात थी ।”

नरेन्द्रनाथ को गत रात्रि की सब बातों का स्मरण हो आया । उनको ऐसा जान पड़ा जैसे उनके नेत्रों ने बेगमों के विचित्र महलों की अनिर्वचनीय शोभा देखी हो और उनके पदचिह्नों से वह रम्य स्थान अङ्कित हुआ हो । किन्तु उन्होंने बीती रात का आश्चर्यपूर्ण वृत्तान्त गजपतिसिंह से नहीं कहा और खुद भी वे उस वृत्तान्त का सचाई का निश्चय नहीं कर सके ।

चौदहवाँ परिच्छेद ।

तातार-देश का पागल बालक



आदमी किले से बाहर हो सामने के मैदान में आरहे हैं। वह स्थान अब भी लोगों से भरा है। क्या अमीर क्या गरीब सभी लोग उस मैदान में दिखाई दे रहे हैं। कोई पालकी पर, कोई हाथी पर, कोई घोड़े पर सवार हो इधर उधर आते जाते हैं। सैकड़ों क्या हजारों व्यवसायिगण, (फेरोवाले) दूकानें पसार कर अमीर और गरीब सभी के लायक भाँति भाँति की चीज़ें बेच रहे हैं। उन चीज़ों को खरीदने या देखने के लिए चारों ओर से झुंड के झुंड लोग आरहे हैं और उस मेले में जिसकी आँखें जिधर उलझ गईं वह उधर ही खड़ा होकर तमाशा देखने लग जाता है। कोई गा बजा कर कोई नाच कर पैसा बटोर रहा है। कहीं बाज़ीगरी का खेल तमाशा हो रहा है। कहीं सपेरिया भाँति भाँति के भयङ्कर साँप दिखला कर दर्शकों के चित्त को चकित कर रहे हैं। कितने ही व्यक्ति अपने को ज्योतिषी कह कर परिचय देते हैं और अपना पुराना कपड़ा बिछा कर बैठे हैं तथा पञ्चाङ्ग दिखा कर फलाफल कहने के लिए लोगों को अपनी ओर बुला रहे हैं। कोई सामुद्रिक विद्या के बल से हस्तरेखा और कपाल रेखा देखकर भूत, भविष्य और वर्तमान का फल लोगों को सुना सुना कर

दक्षिणा वसूल कर रहे हैं। हस्तरेखा देखनेवालों के निकट ज्यादा भीड़ है। अच्छे अच्छे घर की स्त्रियाँ भी घूँघट डाले वहाँ आती हैं और एक पैसा दक्षिणा देकर अपना हाथ दिखला लेती हैं।

नरेन्द्र ने उन सबों के बीच एक अपूर्व ज्योतिषी देखा। उस ज्योतिषी की अवस्था चौदह वर्ष से अधिक न होगी। उस का शरीर कोमल और अत्यन्त गौर वर्ण था। वह सूर्य के आतप में लाल हो गया है। उसके नेत्र, गाल और कन्धों पर जटा बिखरी पड़ी हैं। यद्यपि जटा से आँखें कुछ कुछ ढकी सी हैं, तथापि आँखों से तेज निकल रहा है। सिर से पैर तक सारा अङ्ग काले कपड़े में छिपा है, केवल मुँह बाहर है। कटि में एक सोने का बहुमूल्य कमरकस धूप में झकझक कर रहा है। यह लड़का तातार देशीय मुसलमान है। बिना किसी से कुछ लिये ही हाथ देख कर भूत भविष्य बतला रहा है।

तातार देशी बालक की सुन्दर मुखाकृति देखकर ही कितने लोग उसके पास जाते हैं और हाथ दिखलाते हैं। गजपतिसिंह और नरेन्द्र भी उसके पास गये। पहले गजपतिसिंह ने हाथ दिखला कर पूछा—“हम आज ही साँझ को दिल्ली छोड़ कर कहां जाना चाहते हैं, बतलाओ तो कहां जायेंगे?”

तातार बालक ने गजपतिसिंह का चेहरा और वस्त्र भली भाँति देख कर कहा—“महाराजा यशवन्तसिंह नर्मदा नदी के तीर गये हैं, तुम वहीं जाओगे।”

गजपतिसिंह खूब जोर से हँस कर बोले—“महाराज यशवन्तसिंह औरङ्गजेब के साथ युद्ध करने गये हैं, यह बात दिल्ली के

आबाल वृद्ध सभी जानते हैं; हम राजपूत हैं, हमारा सैनिक लिबास देख कर इतना सभी कह सकते हैं। क्या इससे अधिक बात कहने की विद्या तुम्हारे पास नहीं है ?”

तातार अपनी तेजःपूर्ण दृष्टि से गजपतिसिंह के मुँह पर स्थिर करके, कुछ देर पीछे सिर हिला कर अपने मुँह पर से जटा को पीछे की ओर हटा कर बोला—“राजपूत वीर, मैं और हाल भी कह सकता हूँ, औरङ्गजेब के हाथ से सभी राजपूत सैनिक मारे जायँगे। तुम महाराज से कह देना कि वे अपने लिए एक खूब तेज़ घोड़ा रख छोड़ें, नहीं तो उन्हें भागने का अवसर नहीं मिलेगा। सात हज़ार राजपूतों में सात सौ के भी बचने की सम्भावना नहीं है। वीर, उस युद्ध में तुम ज़रूर खेत आओगे।”

गजपतिसिंह बेशक साहसी योद्धा थे, किन्तु तातार बालक के मुँह से गाम्भीर्यपूर्ण यह बात सुन कर वे सहम उठे। क्षण-मात्र में उनका वह भाव बदल गया। उन्होंने गम्भीरतापूर्वक कहा—“क्या हानि है ? यदि विधाता को वही मंजूर होगा तो वही सही। यह शरीर यदि महाराज के युद्ध में काम आवे तो राजपूत के लिए इससे बढ़ कर गौरव की बात और क्या होगी ? युद्ध में प्राण दे देने से बढ़ कर राजपूत विशेष महत्त्व का काम और नहीं जानते।”

कुछ देर सभी चुप हो रहे। पीछे नरेन्द्र ने अपना हाथ दिखला कर पूछा—“यदि तुम सचमुच हाथ देखना जानते हो तो कहो, कल रात्रि में मैं कहाँ था, और क्या देखा था ?”

तातारवासी बड़ी देर तक चुपचाप धरती की ओर देखता रहा। पीछे धीरे धीरे नरेन्द्र की ओर देख कर बोला—“एक यवनी (मुसलमानी) तुम्हारी प्रेमिका है। कल रात्रि में तुमने उसी को देखा था।”

गजपतिसिंह हँस उठे। उनको हँसते देख वहाँ जितने लोग थे सभी हँसने लगे। सिर्फ नरेन्द्र नहीं हँसे, तातारी की बात सुन कर वे मारे आश्चर्य के लुब्ध हो रहे।

नरेन्द्र को लुब्ध देख कर तातारी उन्हें एक तरफ बुला ले गया और धीरे धीरे उनसे कहा—“दिल्ली में तुम्हारे ऊपर बहुत बड़ा सङ्कट आने वाला है, क्या तुमको यह मालूम नहीं? तुम आज ही दिल्ली से चल दो, आज ही इस मित्र (गजपतिसिंह) के साथ नर्मदा तीर जाओ। यह पागल भी उसी ओर जायगा। यदि तुम आज्ञा दोगे तो तुम्हारे साथ जायगा। यह पागल तुम्हारा कुछ अनिष्ट न करेगा, बल्कि विपद से तुमको बचाने का प्रयत्न करेगा।”

यह सुन कर नरेन्द्र और विस्मित हुए। “यह बालक कौन है? यह बालक क्या सच मुच भूत, भविष्य, वर्तमान कह सकता है? इसने कल रात की बात कैसे जानी? जो हो, है यह जरूर मेरा हितचिन्तक, सम्भव है, यह विपद से मेरा त्राण कर सके।” यह सोच कर नरेन्द्र उसे अपने पास रखने को राजी हुए।

उसी दिन सन्ध्याकाल गजपतिसिंह, नरेन्द्र और तातारी बालक तीनों दिल्ली त्याग कर नर्मदा की ओर चले।

पन्द्रहवाँ परिच्छेद ।

राजा यशवन्तसिंह का शिविर ।


 न १६५८ ईसवी के वसन्तकाल में प्राचीन उज्जैन
 नगर और सिप्रा नदी की अपूर्व शोभा देख कर
 किसका चित्त मोहित न होता था ? चन्द्रमा का
 उदय हुआ है । उसकी स्वच्छ चाँदनी में सिप्रा
 नदी के दोनों किनारे जहाँ तक दृष्टि जाती है, सफ़ेद शिविर ही
 शिविर देख पड़ते हैं । एक ओर राजा यशवन्तसिंह और उनके
 साथी सेनापति कासिमखाँ की असंख्य सेना उन खेमों में विश्राम
 कर रही है । दूसरी ओर सिप्रा नदी के ऊपर पार्श्व में एक पहाड़
 के ऊपर औरङ्गजेब और मुराद के मुग़ल सैन्यदल डेरा डाले पड़े
 हैं । बीच में सिप्रा नदी कलकल शब्द करती हुई शिलाराशियों
 के ऊपर से होकर निरन्तर बह रही है । मानो वह मुग़ल और
 राजपूतों के युद्ध की आयोजना देख कर निर्भीकभाव से उपहास
 करती हुई चली जा रही है । वहाँ से दूर भारतभूमि की मेखला
 के समान विन्ध्य पहाड़ चन्द्रमा के प्रकाश में कुछ कुछ दिखाई
 दे रहा है । कल भीषण युद्ध होगा । आज दोनों ओर सभी लोग
 निस्तब्ध हैं । केवल बीच बीच में पहरेदारों का गम्भीर स्वर उस
 निस्तब्धता का भङ्ग करता है और बहुत दूर तक सुन पड़ता है ।
 तथा शृगालों का चीत्कार नदी के किनारे और पहाड़ की तराई
 में प्रतिध्वनित हो विलीन हो जाता है ।

एक शिविर में नरेन्द्र नौद से सोये हैं। किन्तु युद्ध की चिन्ता भाँति भाँति का स्वरूप धारण कर स्वप्न रूप से उनके हृदय में जागृत हो रही है और उसके साथ साथ कितनी ही पुरानी बातें भी उदित हो रही हैं। स्वप्नावस्था में नरेन्द्र को सिप्रा नदी का कलकल शब्द भागीरथी का शब्द जान पड़ा। उस भागीरथी के किनारे, उपवन से घिरा हुआ वह उच्च प्रासाद देख पड़ा। उन्होंने गङ्गा के किनारे बालू का मैदान देखा। उस मैदान में दो बालक खेल रहे हैं और एक बालिका खड़ी होकर कोमल स्वर में कुछ गा रही है। यह प्रेम की मूर्ति कौन है ? किसी समय गङ्गा के निकटवर्ती उपवन में तीनों बालक सन्ध्या समय खेलते थे, इसमें सन्देह नहीं, किन्तु समय के फेर से वह बात अब स्वप्न-वत् प्रतीत हो रही है।

स्वप्न परिवर्तित हुआ। भागीरथी का कलकल शब्द नहीं, यह तो किसी रमणी के गाने की ध्वनि सुनाई दे रही है। रमणी क्या है मानो साक्षात् अप्सरा है। एक बहुत ऊँचे प्रासाद के झरोखे पर बैठी हुई एक अप्सरा गान कर रही है। अप्सरा नहीं, यह तो ज़लेखा सामने खड़ी है। उसका चाँद सा मुखड़ा काले बादल से केशों में कुछ कुछ ढका सा अपूर्व शोभा दे रहा है। उसकी आँखों से आँसू टपक रहे हैं।

स्वप्न की अवस्था फिर बदल गई। यह ज़लेखा नहीं, यह वही तातारदेशी बालक गीत गा रहा है। जो किसी के साथ व्यर्थ प्रेम करके प्रेम का बदला न पाने के कारण दीवाना होकर देश देश घूम रहा है यह उसी का गाना है। गान सुनते सुनते नरेन्द्र

की नींद उचट गई। वे शिविर के बाहर आये। आधी रात का समय है। सर्वत्र सन्नाटा छाया है। उस सन्नाटे में केवल हवा सनसनाहट सुन पड़ती है। चारों ओर चांदनी छिटकी हुई है। उस चांदनी में नदी, पहाड़, शिविर और मैदान की एक विचित्र शोभा दिखाई दे रही है। वह बदनसीब पागल तातार बालक शिविर के द्वार पर बैठ कर उच्च स्वर से गा रहा है और तान ले रहा है। वह सप्तस्वर से मिलता हुआ गान वायु से मिल कर चारों ओर आकाश-मण्डल में फैल रहा है।

नरेन्द्र ने डबडबाई हुई आंखों से उस बालक की ओर देखा, और उसके नयनों के आंसू पोंछ कर पूछा—“क्या तुम सचमुच प्रेम के ही लिए पागल हुए हो ? क्या तुम्हारे हृदय में कोई गहरी चोट लगी है ? यदि यह सच है, तो कहो मैं तुम्हारे दुःख का साथी होने को तैयार हूँ। जी खोल कर मुझसे सब बातें कह सुनाओ।”

बालक टकटकी बांध कर नरेन्द्र के मुँह की ओर देखने लगा। नरेन्द्र को देख कर न मालूम उसका बदन क्यों कांपने लगा। कुछ देर बाद हृदय के वेग को रोक कर उसने धीरे धीरे करुणा भरे स्वर में कहा—“क्षमा कीजिए। मैं पागल हूँ। जब जो जी में आता है, गाता हूँ।”

नरेन्द्र ने बहुत तरह से समझा बुझा कर बार बार उसके मानसिक दुःख का, और इतनी थोड़ी सी उम्र में फकीरी लेने का कारण पूछा। बालक ने उसका कुछ उत्तर न दिया। सिर्फ इतना ही कहा—मैं पागल हूँ।

जब थोड़ी सी रात बाकी बच रही, तब नरेन्द्र युद्ध का

सामान दुरुस्त करके अपने मित्र गजपतिसिंह के डेरे में गये। वहाँ जाकर उन्होंने देखा, वे भी हवें हथियारों को ठीक कर रहे हैं। अपनी ढाल तलवार, बर्छा और कवच आदि को साफ़ कर रहे हैं। यद्यपि उनके सभी अस्त्र चांदी से उजले हैं। तथापि वे उन अस्त्रों को और भी उज्ज्वल कर रहे हैं। यह देख कर नरेन्द्र को कुछ आश्चर्य हुआ। पीछे उन्होंने गजपतिसिंह की शय्या की ओर देखा, बिछौना ज्यों का त्यों पड़ा था। वे बिछौने पर लेटे तक नहीं, सारी रात जगे ही रह गये। रातभर वे हथियार के परिष्कार ही में लगे थे। जगने से उनके चेहरे पर कुछ फोकापन सा आ गया है। आंखों में कुछ मलिनता सी आ गई है। उनकी दशा ऐसी क्यों हो गई है? नरेन्द्र कई दिनों तक गजपतिसिंह के साथ रह चुके हैं। गजपतिसिंह के मन का जो भाव हो चुका था उससे उनके मुखमालिन्य का कारण कुछ कुछ थोड़ा सा उन्हें मालूम था इसलिए उन्होंने जाना कि जब से तातारी बालक ने उनका हाथ देख कर भविष्यवाणी कही है तब से गजपतिसिंह के जी में यह बात बैठ गई है कि वे उज्जैन की लड़ाई में अवश्य मारे जायेंगे। मालूम होता है, इसी से रात भर वे स्वर्गयात्रा की तैयारी में लगे रहे, उन्हें सोने का अवसर नहीं मिला।

पाठकगण, क्या आप गजपतिसिंह को भीरु समझ रहे हैं? राजपूत प्रायः सभी स्वभावतः निर्भीक और साहसी होते हैं। उस समय तेजसिंह के पुत्र गजपतिसिंह से बढ़ कर युद्ध में कोई साहसी न था। तथापि कल के युद्ध में अवश्य मृत्यु होगी, यह जान कर वीरशिरोमणि साहसी के ललाट पर चिन्ता का चिह्न कुछ कुछ दिखाई देने लगा है। योद्धागण यौवन के मद से मत्त होकर, जीवन

के सुख में मग्न होकर, युद्ध के उत्साह से उमँग कर और विजय की आशा से आश्वस्त होकर मृत्यु की चिन्ता को चित्त से हटाते हैं। युद्ध को वे लोग एक प्रकार का खेल समझते हैं। जैसे सब लोग मरते हैं वैसे वे भी एक दिन ज़रूर मरेंगे। इसमें क्या हानि है। किन्तु कल मरेंगे, यह ज्ञान हृदय को विना कँपाये नहीं रहता। वज्रपात से कहीं बढ़ कर वज्रपात का ज्ञान दुःसह होता है। अपनी मृत्यु का स्मरण होने से किसका मुँह उदास नहीं होता? गजपतिसिंह उस समय और लोगों की तरह गणना की बात सच समझते थे। आज की लड़ाई में वे मरेंगे यह उन्हें दृढ़ विश्वास था। मृत्यु के लिए सुसज्जित होकर उन्होंने सारी रात जाग कर बिताई है। अस्त्र का परिष्कार करना तो केवल समय बिताने का एक बहाना मात्र था।

नरेन्द्र को आते देख गजपतिसिंह ने भट उठ कर उसका हाथ पकड़ कर और मुस्करा कर कहा—“देखो, खूब अच्छी तरह ध्यान देकर देखो, ये अस्त्र सब साफ़ हुए हैं या इनमें अभी कसर है?”

नरेन्द्र—“क्या लड़ाई में आज आप ज़रूर ही जायँगे? तातारवासी बालक ने जो बात कही थी वह याद है न?”

गजपतिसिंह—“सम्मुख युद्ध में राजपूत वीर कभी पीछे की ओर घूम कर भी नहीं देखते। वे केवल शत्रुओं को मार कर मरना जानते हैं। हमारे पिता तेजसिंह ने हमें ऐसा ही उपदेश दिया था।”

कुछ देर ठहर कर गजपतिसिंह ने फिर कहा—नरेन्द्र, किसी युद्ध में हमने महाराजा यशवन्तसिंह का कुछ विशेष उपकार किया था। उन्होंने प्रसन्न होकर हमें एक मोती की माला दी थी। तब

से हरेक लड़ाई में हम इस माला को पहन लेते हैं। आज के युद्ध में तुम बच जाओगे। लो, यह मोतीमाल राजा को दे देना और उनसे कहना—“देश में हमारे दो सन्तान हैं जो अभी बहुत छोटे हैं। उन अभागों के माँ नहीं है। महाराज से कहियो, उन बच्चों के ऊपर कृपादृष्टि रखे। रघुनाथ भी यथासमय राजा की आज्ञा से पिता की भाँति संग्राम में जूझ कर प्राण देने को समर्थ होगा। इससे अधिक मङ्गल की कामना उसके पिता के हृदय में नहीं है।”

नरेन्द्र चुप हो रहे। उनकी आँखों से दो बूँद आँसू टपक पड़े। गजपतिसिंह की आँखों में नाम मात्र का भी आँसू न था।”

सहसा जुझाऊ बाजे बजने लगे। औरङ्गजेब सिप्रा नदी पार होने का उद्योग कर रहे हैं। गजपतिसिंह अख शस्त्र से सुसज्जित होकर शिविर के बाहर आये और झट घोड़े पर सवार हो तीर के वेग से नदी के किनारे चले। नरेन्द्र भी उनके पीछे पीछे चले।

सोलहवाँ परिच्छेद ।

मुग़ल सेना का शिविर ।



त्रिय सेना के शिविर का हाल पूर्व परिच्छेद में पाठक पढ़ चुके हैं । अब एक बार वे मुग़ल सेना के शिविर का भी दर्शन करले ।

औरङ्गजेब पहले ही वहाँ पहुँच कर मुराद के आने की आशा कर रहे थे । दो तीन दिन पीछे मुराद भी अपना दल बल लिये औरङ्गजेब से आ मिले । मुराद के आने के पहले यदि यशवन्तसिंह औरङ्गजेब पर आक्रमण करते तो औरङ्गजेब को भागने का रास्ता नहीं सूझता । कोई कोई इतिहास-वेत्ता कहते हैं कि यह बात यशवन्तसिंह नहीं जानते थे कि औरङ्गजेब के पास थोड़ी सी सेना है । इसी से उन्होंने औरङ्गजेब पर आक्रमण नहीं किया । किसी किसी का कथन है कि महा पराक्रमी राजपूत सेनापति (यशवन्तसिंह) यह जानते थे किन्तु शत्रु की थोड़ी सी सेना के साथ युद्ध करना नीतिविरुद्ध है; यह जान कर आक्रमण करना उचित नहीं समझा और वे प्रतीक्षा कर रहे थे कि पहले शत्रुसेना ही उन पर आक्रमण करे ।

आज बहुत दिनों बाद औरङ्गजेब और मुराद, इन दोनों भाइयों में भेट हुई है । कल युद्ध होगा । विजय का नक्कारा

वजेगा । विजय शब्दों से देश देशान्तर कम्पायमान होगा । एक बहुत बढ़िया रेशमी कपड़ों से मढ़े हुए शिविर में कई एक मोमी शमादान जल रहे हैं । भाँति भाँति के सुखादु भोजन की सामग्री थालियों में रक्खी हुई है । दोनों भाई (औरङ्गजेब और मुराद) खाना खाने बैठे हैं । अप्सराओं से भी बढ़ कर सुन्दरी नवयौवना नर्तकीगण नाच गा कर और हाव भाव दिखला कर दोनों शाहज़ादों का मनोरञ्जन कर रही हैं । मुराद का उन्नत ललाट, विशाल वक्षस्थल और वीरता से भरी आकृति दर्शनीय है । हृदय भी उसका कपट-शून्य है । औरङ्गजेब का चेहरा बना-बटी भाव से प्रसन्न दीख पड़ता था, आँखें बड़ी तेज़ और तीव्रता से भरी हुई थीं । चित्त हमेशा चिन्ताओं से घिरा था । तथापि वह कैसी मन लुभावनी मीठी हँसी हँस रहा है । किस नम्रता और सम्मान से मुराद के साथ वार्तालाप कर रहा है जो सुनते ही बन आवे । मानो भाई को देख कर वह मारे खुशी के फूले अंग नहीं समाता; मानो भाई (मुराद) के कार्यसाधन के सिवा संसार में उसका कोई दूसरा कर्तव्य नहीं है और न भाई की कार्यसिद्धि से बढ़ कर उसके लिए कोई आनन्द का विषय है ।

दोनों भाइयों के बड़ी खुशी से भोजन कर चुकने पर नौकरों ने भाँति भाँति के फल और शराब उनके सामने ला रक्खीं । रंडियों ने फिर गाना प्रारम्भ किया । मधुर तानराग से शिविर के भीतर फिर आनन्द का स्रोत उमड़ चला । चोटी में गुथे हुए हीरे की ज्योति से कटाक्ष दृष्टि की ज्योति मिलने लगी और

सुललित गान के साथ, मधुर मुसकुराहट नवयुवक मुराद के हृदय पर गज़ब ढाने लगी, मुराद उन वाराङ्गनाओं का नाच देख कर मोहित हो गये । उनका दिल अपने हाथ से जाता रहा । आखिर औरङ्गजेब का इशारा पाकर वे वेश्याये' वहाँ से चली गईं ।

औरङ्गजेब सोने के गिलास में शराब ढाल कर मुराद के हाथ में देकर बोले—“आज हमें बहुत दिनों में अपने जी का हैसला पूरा करने का अवसर मिला है । हम आज अपने जीवन को सार्थक समझते हैं ।”

मुराद—“आपके समान निष्कपट भाई हम कहाँ पावेंगे । आज आपसे मिल कर हम अपने को बहुत बड़ाभागी मानते हैं । यह गिलास आप ही लीजिए ।”

औरङ्गजेब—“भाफ़ कीजिए, आप इस बात को बखूबी जानते हैं कि हम संसारी सुख की इच्छा नहीं रखते । हम इतना ही चाहते हैं कि आपके सदृश वीर पुरुष को पिता के सिंहासन पर बैठे देख कर अपनी आँखों को तृप्त करें । इसको सिवा हम और कुछ नहीं चाहते । यदि पैगम्बर ने हमारे इस इरादे को पूरा किया तो हम बड़ी खुशी से फ़कीरी लेकर मक्के चले जायेंगे ।” यह कह कर औरङ्गजेब ने शराब के प्याले को मुराद की ओर बढ़ाया ।

मुराद—“आप सचमुच दिल के बहुत साफ़ और सच्चे हैं नहीं तो आप हमारे लिए इतनी कोशिश क्यों करते ?”

औरङ्गजेब—“आपके लिए कोशिश न करेंगे तो किसके लिए करेंगे ? आपके सिवा तैमूरलङ्ग के सिंहासन पर बैठने

योग्य दूसरा कौन है ? शुजा ऐय्याश और डरपोक है । वह तैमूर के सिंहासन को कलङ्कित करेगा । दारा आत्माभिमानी महामूर्ख और हिन्दुओं का पक्षपाती है । वह काफिर तैमूर के सिंहासन को कलुषित करेगा । उन दोनों के सिंहासनारूढ़ होने की अपेक्षा हिन्दुस्तान फिर हिन्दुओं के हाथ में जाय यही बेहतर है । तैमूर का नाम मिट जाय, यह मंजूर है पर हम उन दोनों के लिए तो हर्गिज़ लड़ाई न करेंगे । तब जिनका साहस असीम है, जिनका यश सारे भारतवर्ष में फैला हुआ है, जो मुग़ल सिंहासन पर बैठने के सर्वथा सुयोग्य हैं, जो मुग़ल खानदान के एक मात्र गौरव-स्वरूप हैं, हम उनके लिए अपना प्राण तक देने को तैयार हैं । हम आपकी यह कुछ बढ़ाई नहीं करते, जब हम आपका मुँह देखते हैं तब हमें यही जान पड़ता है जैसे आपके कपार में बादशाह शब्द लिखा हो । आपकी चौड़ी छाती और विशाल बाहु में योद्धा शब्द अङ्कित है । हम अपने जीवन को धन्य मानते हैं । हम अपने भाग्य की बढ़ाई करते हैं कि ऐसे वीर पुरुष के कार्य-साधन में हम प्रवृत्त हुए हैं । यह कह कर औरङ्गजेब ने फिर एक प्याले को शराब से भर कर मुराद के हाथ में दिया ।”

मुराद—“हमें आपका पूरा भरोसा है । हम आपकी इन बातों से बहुत खुश हुए । कल ज़रूर लड़ाई होगी । सेना तैयार है ।”

औरङ्गजेब—“हम तो तीन चार दिन से यहाँ डेरा डाले पड़े हैं, किन्तु युद्ध करने में हम अब भी अनभिज्ञ हैं, हिम्मत न पड़ती थी कि अकेले युद्ध करें । आप हमारे बग़ल में खड़े रहेंगे

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)
तो हम अपने को सर्वदा सुरक्षित समझेंगे और उस समय युद्ध
में हमारा साहस दुगुना बढ़ जायगा ।”

मुराद ऐसा मूर्ख और आत्माभिमानि था कि, वह खुशामदी
बातों को भी सत्य करके मानता था । परिमाण से अधिक
मद्यपान करने के कारण वह इस समय और भी ज्ञानशून्य हो
रहा था । औरङ्गजेब से अपनी प्रशंसा सुन कर मुराद आनन्द से
गद्गद् हो बोला—“भाई साहब ! आप कुछ सोच न करें, कुछ
दिन में आप भी युद्ध में निपुण होंगे । युद्ध का भार तब तक हमारे
ऊपर रहने दें । हम, हम शत्रु से नहीं डरते । हम संसार में
किसी का भरोसा नहीं रखते । हम सिर्फ अपने साहस और इस
तलवार के ऊपर निर्भर रहते हैं ।” यह कह कर मुराद ने म्यान से
तलवार खींच ली । चिराग की रौशनी में तलवार बिजली की तरह
चमक उठी । वह फिर तलवार को म्यान में रखने लगा । किन्तु
मद्यपान करने से उसकी दृष्टि स्थिर नहीं थी, इससे तलवार को
वह म्यान में नहीं रख सका । तलवार उसके हाथ से छुट कर
धरती पर गिर पड़ी । औरङ्गजेब ने हँसी रोक कर एक प्याला
मदिरा का उसे और पीने को दिया । मुराद ने उस प्याले को भी
खाली कर दिया ।

औरङ्गजेब ने कहा—“भाई, अब हम जाते हैं, कल युद्ध के
समय फिर आपके दर्शन होंगे ।”

मुराद—“अच्छा, जाते हो तो जाओ, आज हम जी से
तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हैं । एक बार तुम्हें गले से लगावें ।” यह कह

कर मुराद आलिङ्गन करने को उठा, परन्तु अधिक मद्यपान के कारण तलमला कर धरती पर गिर पड़ा और बेहोश हो गया ।

मुराद की यह अवस्था देख कर औरङ्गजेब के मुँह का भाव बदल गया । वह भाई को जो प्रसन्न मुख कुछ देर पहले दिखला चुका था, वह केवल उसकी वश्वकता थी । मुराद को बेहोश देख कर वह उसकी मूर्खता पर हँसने लगा और धीरे धीरे उस शिविर में टहलने लगा । बीच बीच में सहसा खड़ा होकर वह सामने स्थिर दृष्टि से देखने लग जाता था, जैसे उसे कोई अपूर्व वस्तु दीख पड़ती हो, फिर टहलने लगता था । कभी तो उसके होठों पर मुसकुराहट की छटा ललित होती थी, कभी मुँह पर कठोर भाव झलकने लगता था और भौंहें सिकुड़ जाती थीं ।

औरङ्गजेब टहलते टहलते एक जगह खड़ा होकर एक ओर स्थिर दृष्टि से ताकने लगा और आप ही आप लड़खड़ाती हुई ज़वान से यों बोलने लगा, अहा, चमकीला मणिमय मुकुट, रत्न-जटित सिंहासन और इतना बड़ा भारत प्रदेश पिता के हाथ से चला जा रहा है । लेने की घात में सभी लगे हैं । पर लेगा कौन ? दारा, दारा ! ख़बरदार ! तुम साहसी हो, बलवान् हो, और चतुर भी हो, किन्तु समझ रखो, हम तुमसे किसी अंश में न्यून नहीं हैं, हम भी कमज़ोर हाथ से तलवार का कब्ज़ा नहीं ष्पकड़ते, रास्ता छोड़ दो, नहीं तो हम तलवार के ज़ोर से रास्ता साफ़ करेंगे । तुम अपने को बहुत बड़ा करके मानते हो, तुम घमण्डी हो, किन्तु तुमसे बढ़ कर कहीं घोर घमण्ड और दृढ़तर उद्देश्य इस मक्कार की मीठी हँसी के भीतर छिपा हुआ है । इस वक्त्रती के

हृदय में क्या क्या भाव भरा हुआ है वह तुम क्या जानोगे ? मुराद, तू अपने को बहुत बड़ा वीर, और साहसी समझता है । तू ही बादशाही तख्त पर बैठने लायक है ? तू ही सिंहासन पर बैठेगा ? तो सूअर जिस तरह कीचड़ में लोटता है उस तरह तू धरती पर क्यों लोट रहा है ? जंगली शूकर क्या तुम से कम साहसी है ? मूर्ख ! कल युद्ध होगा, आज शराब पीकर रण्डियों की तिरछी नज़र से घायल होकर धरती पर पड़ा है । तू सिंहासन पर बैठ कर रण्डियों की गुलामी करेगा, या बादशाहत ! ठहर, जब तक तुझसे काम लेना है तब तक तो तुझे हम किसी तरह उलझाये रहेंगे । जब तुझसे हमारा मतलब निकल जायगा, तो पैर की ठोकर मार कर तुझे इसी तरह धरती पर दूर फेंक देंगे । कल युद्ध होगा, कौन जानता है किसके भाग में क्या बदा है ? पिता के हाथ से बादशाहत छीन लेने के लिए हम प्रवृत्त हुए हैं । हमने बड़े भयङ्कर काम में हाथ डाला है । उद्योग की सीमा तक पहुँच चुके हैं, अब लौट भी नहीं सकते । जैसे होगा, हथियार के हाथ कण्टकमय पथ को साफ़ करेंगे । मालूम होता है, उज्जैन से आगरे तक का मार्ग मनुष्यों के लोहू से भर जायगा । हम जो कुछ प्रतिज्ञा कर चुके हैं उससे अब कदापि विचलित न होंगे । या तो बादशाही ताज से अपने सिर को सुशोभित करेंगे, या कल अपने हृदय के रक्त से सिन्धु नदी के जल को लाल करेंगे ।

सत्रहवाँ परिच्छेद ।

उज्जयिनी का युद्ध ।



जैन की लड़ाई १६५८ ई० के वैशाख महीने में हुई । मुग़ल और औरङ्गज़ेब की सेना सिप्रा नदी के पार होने का उद्योग करने लगी । किन्तु यह कुछ साधारण बात न थी । औरङ्गज़ेब ने सेना को उस पार ले जाने का बड़ा बड़ा ढंग लगा रक्खा था, बड़ी बड़ी तरकीबें लगा रक्खी थीं । उन्होंने ऊँची जगह में तोपें लगा कर शत्रुओं को आगे आने की गति रोक कर अपने सैन्यों को नदी पार हो जाने की आज्ञा दी । दुश्मनों ने भी पहले ही से तोपें लगा रक्खी थीं और उनके द्वारा शत्रुओं की सेना के आने का रास्ता रोक रक्खा था । दोनों ओर से दनादन तोपें चलने लगीं । दोनों ओर जुभाऊ बाजे बजने लगे । दोनों दलों में घोर युद्ध ठन गया । यशवन्तसिंह युद्ध में बड़ी बहादुरी दिखा कर मुग़ल सेना की गति रोकने लगे । किन्तु उनके साथी सेनापति कासिमख़ाँ ने जी लगा कर युद्ध न किया । वह युद्ध में बड़ी लापरवाई दिखलाने लगा । उस समय के इतिहासलेखक सन्देह करते हैं कि उसने औरङ्गज़ेब से कुछ विशेष धन पाकर गोले बारूदों को छिपा रक्खा । इस कारण उसकी तोपें शीघ्र ही मौन साध बैठीं । इस अवस्था में दुश्मन की तोपों के सामने युद्ध करना

यशवन्तसिंह के लिए असम्भव हो पड़ा । किन्तु वे उससे भयभीत न होकर अमानुषी वीरता दिखला कर दुश्मनों का गतिरोध करने लगे । वह जगह पहाड़ी थी, इसलिए आक्रमणकारी सहज ही नदी के पार न हो सके; किन्तु साहसी मुराद बहुत सी सेना साथ ले सब विघ्न-बाधाओं को किनारे कर नदी पार हो गया । यह देख कर जितनी सेना थी, सभी नदी के पार उतर आई । पस्तहिम्मत, डरपोक कासिमख़ाँ उसी घड़ी सेना सहित भाग गया । यशवन्त-सिंह अकेले पड़ गये; इससे उनके पराभव की सीमा न रही । मानो विपद ने उन्हें चारों ओर से घेर लिया । किन्तु थे तो वे फिर क्षत्री, चारों ओर से शत्रु-सेना से घिर जाने पर भी वे धीरता-पूर्वक बड़ी बहादुरी के साथ लड़ाई करने लगे । उनकी सेना की संख्या क्रमशः घटने लगी । उनके प्रिय अनुचरगण चारों ओर हताहत होने लगे । मुग़ल सैन्यगण जय जयकार से धरती और आकाश को कम्पायमान करने लगे । तथापि राजपूत वीर युद्ध से पराङ्मुख न हुए । यशवन्तसिंह जी पर खेल कर बहुत देर तक लड़े, पर जब उन्होंने देखा, अब लड़ने में कुशल नहीं है । तब वे केवल पाँच सौ बची हुई सेना साथ लेकर रणभूमि से भाग चले । सात हजार राजपूत वीर उस दिन के भीषण संग्राम में शहीद आये ।

अठारहवाँ परिच्छेद ।

चित्तौर ।

यशवन्तसिंह की बची हुई थोड़ी सी सेना राजपूताने की ओर आने लगी । नरेन्द्र अपने परम मित्र गज-पतिसिंह की मृत्यु से अत्यन्त दुखी हुए । किन्तु प्रति दिन नये नये देशों के देखने से उनकी चित्त-वृत्ति बँट पड़ी और उनका वह दुःसह शोक धीरे धीरे घट चला । कितने ही दिनों बाद राजपूत सेना ने राजपूताने की सीमा के भीतर पाँव रक्खा । यशवन्तसिंह मारवाड़ देश के राजा थे । उस देश में मेवाड़ देश होकर आना पड़ता था ।

मेवाड़ देश के असंख्य किले देख कर नरेन्द्र चकित हुए । सभी किले प्रायः पहाड़ के ऊपर बने थे । उन किलों को सहसा हस्तगत करना शत्रुओं के लिए दुःसाध्य था । पहाड़ अपनी चोटी पर मुकुट की भाँति किलों को धारण कर अपूर्व शोभा पा रहे थे । उन किलों में जाने का एक ही रास्ता था, जो सोपान की तरह नीचे से ऊपर तक बना था । उसी रास्ते से लोग आते जाते थे । किले के अन्दर खाद्य सामग्री बराबर जमा रहती थी, युद्ध के समय वह एक मात्र, किले में प्रवेश करने का पथ रोक दिया जाता था । पीछे शत्रुगण हज़ार उपाय करने पर भी किले के भीतर प्रवेश नहीं कर सकते थे । किले के रहने

वाले दुश्मनों से निर्भय होकर निश्चिन्त रहा करते थे । शत्रु-गण जब क़िले की तरफ़ बढ़ने का परिश्रम करते थे तब ऊपर के पत्थर की ऐसी ऐसी शिलायें लुढ़का दी जाती थीं कि जिनके आघात से एकही बेर झुंड के झुंड शत्रु सैन्य नष्ट हो जाते थे ।

इस प्रकार भांति भांति के क़िलों की शोभा देखते हुए सैनिक-गण सन्ध्या समय चित्तौर क़िले के पास आ पहुँचे ।

सैन्यगण भोजनादि कृत्य समाप्त करके अपने अपने शिविर में विश्राम करने गये, किन्तु नरेन्द्र कुछेक राजपूत वीरों को साथ ले चित्तौर पहाड़ के ऊपर चढ़ कर क़िले के भीतर घूमने लगे । नरेन्द्र ने चकित दृष्टि से कुन्तराज का सुन्दर स्तम्भ देखा, महारानी पद्मिनी का प्रासाद और पुष्करिणी देखी, जिस सदर फाटक पर बड़े बड़े प्रतापी क्षत्रिय योद्धाओं ने तलवार के हाथ शत्रुओं का सामना करके जीवन त्याग किया था, वह स्थान देखा । जिस जगह क्षत्राणियों ने चितारोहण करके वंश की मान-मर्यादा की रक्षा की थी, वह जगह भी देखी ।

यकायक उनके सामने एक वृद्ध मनुष्य आ उपस्थित हुए । राज-पूतों में किसी किसी ने उन्हें पहचाना, वे चित्तौर के पुराने 'चारण' थे । चारणगण पहले राजपूताने के राजाओं के गौरव का गान करके राजाओं के वंशजों और नगरनिवासियों का मनोरञ्जन करते थे । राजपूताने में अब भी यह चाल है कि साँझ को सब लोग इकट्ठे होकर चारणगण के मुँह से क्षत्रियवंश की वर्णना सुनते और अपने पूर्वजों को अद्भुत वीरता की बातें सुन सुन कर आँखों में आनन्दाश्रु भरते हैं ।

नरेन्द्र और उनके साथी राजपूतों ने चारण को एक शिला के ऊपर बैठाया और आप सब उन्हें चारों ओर से घेर कर बैठे। नरेन्द्र प्रभृति राजपूतों ने प्रतापसिंह का यश सुनने की इच्छा प्रकट की। चारण प्रतापसिंह का यश गाने लगे।

राजपूतगण, यह कुछ मेरा मनःकल्पित गीत नहीं है। यह अम्बरदेश के अभिमान को चूर्ण करने वाला, पर्वत के शिखर का गीत है, यह पहाड़ के झरनों का गीत है। जिस पहाड़ की कन्दरा में एक साहसी राजपूत वीर की हड्डी पड़ी हुई है उसी कन्दरा से इस गीत का आविर्भाव हुआ है। जिस पर्वतनिःसृत नदी का जल क्षत्रिय-वीर के शोणित से लाल हो गया था उस नदी के किनारे अब भी यह गीत गाया जाता है। प्रतापसिंह का यश आप लोग सुना चाहते हैं, सुनिए।

“अकबर शाह के प्रखर प्रताप से सारा भारतवर्ष काँप रहा था, किन्तु प्रतापसिंह का हृदय कम्पित नहीं हुआ। चित्तौर उनके अधिकार से निकल गया था, उनके पिता के राजत्व-काल में ही निष्ठुर अकबरशाह ने चित्तौर ले लिया था। किले के रक्षार्थ जयमल्ल ने युद्ध करके प्राण दे दिया। पुत्तू, धुत्तू की माँ, और पुत्तू की धर्मपत्नी ने सम्मुख युद्ध में बड़ी वीरता दिखा कर प्राण त्याग किया। राजपूत वीरों ने चित्तौर के रक्षार्थ बड़ी बहादुरी दिखलाई, तथापि अकबर ने राजपूतों के हृदय को विदीर्ण करके चित्तौर ले ही लिया। प्रताप जब राजा हुए, तब चित्तौर उनके अधिकार में न था, न उनके पास सेना थी, न धन था, किन्तु उनके हृदय में वीरता थी। वीर पुरुषों के लिए

दुःसाध्य क्या है ? बड़े बड़े प्रतापी चत्रो राजाओं ने दिल्ली का दासत्व स्वीकार किया; किन्तु प्रतापसिंह ने नहीं किया । अम्बर के भगवानदास और मारवाड़ के मल्लदेव ने अपनी लड़को तक दिल्ली के बादशाह को दे डाली । पर महाप्रतापी प्रतापसिंह ने म्लेच्छ का सम्बन्धी होना स्वीकार नहीं किया । वे स्वीकार क्यों करते ? सेवाड़पति सूर्यवंश के भूषण थे । वे अपने निष्कलङ्क वंश को क्यों कलङ्कित करते ?

समुद्र की तरङ्ग की भांति दिल्ली की सेना सेवाड़ में उमड़ आई । उसके साथ—हा ईश्वर ! राजपूताने के कितने ही राजाओं ने कलङ्क का टीका क्यों अपने ललाट पर चढ़ाया ? कितने चत्रो राजाओं ने दिल्ली के सैन्यगणों का साथ दिया । मारवाड़, अम्बर, बीकानेर और बूँदी प्रभृति अनेक देशों के भूपों ने दासत्व का कलङ्क दूर करने तथा प्रतापसिंह को भी अधीन बनाने के हेतु अकबर के साथ योग दिया । अम्बर के महाराज मानसिंह प्रतापसिंह से मिलने आये । महामान्य प्रतापसिंह म्लेच्छ के कुतुम्ब के साथ भोजन करने को सम्मत नहीं हुए । मानसिंह इस अपमान से चिढ़ कर दिल्ली से अखण्ड सेना साथ ले सेवाड़ देश पर चढ़ आये । मानसिंह, तुमने अपने कुल में कमल होकर जन्म लिया, कानुल से बङ्ग देश तक तुमने विजय पताका फहरा कर शत्रु का संहार किया । अब किस लिए ? हाथ ! म्लेच्छ की अधीनता स्वीकार करके तुमने राजपूतों के नाम में मन्त्रा लगाया । मुसलमानों के चरण की धूल से राजपूतों की उज्ज्वल ललाट की शोभा क्या ही सुन्दर होकर पड़ती है ।

अन्धकार में इस जलप्रपात की अद्भुत तेज़ी आप लोगों को नहीं सूझती होगी । मैं अँधेरे में हूँ । मैं उस तेज़ी को स्पष्ट देख रहा हूँ । उस जलप्रपात के बीच में एक बहुत ऊँचा शिलाखण्ड बड़े गर्व से खड़ा है । जलप्रपात से वह किञ्चित् भी कम्पायमान नहीं होता । जलप्रपात की अपेक्षा अधिक तेज़ी से समुद्र की तरङ्गमाला की भाँति मुग़ल सेना ने आकर मेवाड़ देश को आप्लावित कर दिया । परन्तु प्रतापसिंह शिलाखण्ड की तरह खड़े रहे । हल्दीघाटी में घोर युद्ध हुआ । सेनाओं का कोलाहल पहाड़ की प्रत्येक कन्दरा में प्रतिध्वनित होने लगा । युद्ध के तुमुल शब्दों से आकाशमण्डल भर गया । किन्तु साहस ही से क्या होगा ? मुग़लों की असंख्य सेना के सामने थोड़ी सी राजपूत सेना कर ही क्या सकती ? बाईस हज़ार राजपूतों में केवल आठ हज़ार राजपूतों को साथ ले प्रतापसिंह भागे । और चौदह हज़ार क्षत्रिय वीर हल्दीघाटी की लड़ाई में खेत आये ।

यह एक ही बार नहीं ? साल ही साल इस प्रकार युद्ध होने लगा । प्रति वर्ष मेवाड़पति के सैन्य, धन और राज्य की हानि होने लगी । साल साल उनका जीवनाकाश अन्धकार में छिपने लगा । किन्तु न उनकी वीरता का कुछ हास हुआ और न उन्होंने दिल्ली का दासत्व ही स्वीकार किया । राजपूत वीरगण, यदि तुम लोगों के नेत्र में जल हो, हृदय में रक्त हो तो उसे कब के लिए रखोगे ? यह देखो, प्रतापसिंह की रानी पहाड़ की कन्दरा में पत्थर पर सोई है, आकाश बादलों से घिरा है, मूसलधार पानी बरस रहा है, प्रतापसिंह के शिशु सन्तान गुफा के भीतर सोये हुए हैं, प्रतापसिंह

हाथ में तलवार लिये उन लोगों की रक्षा कर रहे हैं। यह देखो, पेड़ के ऊपर से रस्सी लटक रही है। काठ के तख्ते पर कौन भूल रहा है? हा विधातः! राजा के छोटे छोटे बच्चे भूल रहे हैं। क्यों भूलते हैं? इस लिए कि नीचे रहने से शायद उन्हें कोई जंगली हिंस्रक जन्तु ले न जाय। यह देखो, प्रतापसिंह की पतोह सूखे पत्तों को जला कर अपने हाथ से रसोई बना रही है। कुछ देर में रोटी तैयार हुई। आधा रख दिया, आधे में सबों ने थोड़ा थोड़ा खाकर पानी पिया। सब उसी वक्त खा लेते तो फिर रात में बालबच्चे क्या खाते? अहा, इतने में एक और दुर्घटना हुई। बच्चे के रोने का शब्द सुन पड़ा। एक छोटी सी बालिका के हाथ से वनविलाव रोटी लेकर भाग गया। राजकन्या एक टुक रोटी के लिए चिल्ला चिल्ला कर रो रही है।

“चत्रिय वीर! प्रतापसिंह की वीरता और सुयश का गान करो, उन्होंने पूरे पच्चीस वर्ष मुसलमानों के साथ युद्ध किया। क्या गरमी, क्या जाड़ा, क्या बरसात उन्होंने बराबर जङ्गल पहाड़ों में रह कर समय बिताया, कभी अपने सुख दुःख पर ध्यान न दिया। जब तक, जङ्गल में, पहाड़ के ऊपर, घाटी में जहाँ पाया वहीं शत्रुसेना का विध्वंस किया। यद्यपि उनकी रानी और उनके राजकुमार आदि ने पर्वत की कन्दरा में रह कर अपार कष्ट सहें तथापि उन्होंने जीते जी अकबर की अधीनता स्वीकार न की। प्रतापसिंह का यह यश देश देश में सर्वत्र फैल गया। और जब तक यह वसुन्धरा रहेगी, तब तक उनका यह उज्ज्वल यश संसार में देदीप्यमान रहेगा। यहाँ तक कि यदि स्वर्ग में साहस और स्वदेशानुराग

की बात चले तो प्रताप का यह यश आकाश मार्ग से स्वर्गलोक में पहुँच कर देवताओं की मण्डली को भी उद्दीप्त करे ।”

चारण का ओजःपूर्ण यशोगान सुन कर सभी स्तब्ध हो रहे । कुछ देर बाद उन लोगों ने सिर उठा कर देखा तो चारण का कहीं पता नहीं, न मालूम वह वहाँ से किधर चला गया । केवल चारण का गान मेघगर्जन की भाँति बार बार उन क्षत्रिय सेनागणों के कानों में गूँजने लगा ।

राजपूतगण अपने देश का, अपनी जाति का पूर्व गौरव स्मरण करके उत्साह से पुलकित हो उठे । उनकी आँखों में आँसू भर आया । बहुत देर तक वे लोग चुपचाप वहीं बैठे रहे, तिस पीछे उठ कर अपने शिविर में आये । नरेन्द्र उन लोगों के साथ नहीं गये । वे गाल पर हाथ रख कर उस मेघाच्छन्न रात में चित्तौर के क़िले में बैठ कर न मालूम क्या क्या सोचने लगे । बादल का रङ्ग क्रमशः गाढ़ा होने लगा । तो भी नरेन्द्र वहाँ से न उठे; बादल बार बार गरजने लगा, बिजुली चमक चमक कर लोगों की आँखों में चकाचौंधी पैदा करने लगी । हवा बड़े वेग से बहने लगी । नरेन्द्र तो भी वहाँ बैठे ही रहे ।

नरेन्द्र मन ही मन सोचने लगे—“अपने देश में भी बड़े बड़े पराक्रमी राजा हैं, तब रमणीय वङ्गदेश की ऐसी दुर्दशा क्यों ? राजपूतों के जीवन का मुख्य व्यवसाय युद्ध ही है । आबाल वृद्ध सभी युद्ध करना जानते हैं । उन लोगों ने धन, सम्पत्ति, प्राण तक त्याग दिये हैं, पर स्वाधीनता का त्याग नहीं किया है । उन लोगों के गाँव जल कर खाक हो गये हैं, शहर लूट लिये गये हैं, क़िला

शत्रुओं के हाथ में जा चुका है तो भी अब तक उन लोगों ने अपनी स्वाधीनता का गौरव नहीं खोया है। उस गौरव का गान अब भी अर्बली पहाड़ की कन्दरा और तराइयों में प्रतिध्वनित हो रहा है। एक वङ्गदेश है, जिसके गौरव का गान न प्रखरप्रवाहिनी गङ्गा नदी के किनारे में सुना जाता, न स्वाधीनता का गान ब्रह्मपुत्र के तीर में ही कहीं सुना जाता। राजा से लेकर प्रजा तक सभी सुख की नींद सो रहे हैं। संसार में न उनका कोई नाम जानता, न वीरमण्डली में बैठने के लिए उनको कहीं जगह मिलती।

उन्नीसवाँ परिच्छेद ।

योधपुर ।



सरे दिन सवेरे नरेन्द्र ने अनुसन्धान करके जाना, पूर्वोक्त चारण बाल्यकाल में मेवाड़पति प्रतापसिंह के द्वारा प्रतिपालित हुए थे । वे लड़कपन में बराबर प्रतापसिंह के साथ पर्वत की गुफा और तराई में निवास करते थे । उन्होंने उसी छोटी सी अवस्था में महाराज के सुयश की रचना करके अपने कवित्व का परिचय दिया था ।

दिल्लीपति के साथ बारंवार युद्ध करने के पीछे जब प्रतापसिंह का देहान्त हुआ तब चारण की उम्र बीस वर्ष की थी । यह लगभग साठ वर्ष की बात हुई । इस लिए चारण की उम्र इस समय करीब करीब अस्सी वर्ष की होगी । यद्यपि उनकी अवस्था अब घूमने फिरने की न रही, तो भी वे चित्तौर के क़िले में रात को घूमते हैं । लोग कहते हैं, चारण का शारीरिक बल अब भी युवा पुरुषों की अपेक्षा कम नहीं है । उनमें एक दैवी शक्ति है ।

प्रतापसिंह जब मरने लगे तब उन्होंने युवराज अमरसिंह को अपनी मृत्युशय्या के पास बुला कर कहा कि वे भी पिता की भाँति मुसल्मानों के साथ युद्ध करें और कभी मुसल्मान की अधीनता स्वीकार न करें । पिता की आज्ञा के अनुसार अमरसिंह ने कई वर्ष

तक अकबरशाह और उनके बेटे जहांगीर के साथ युद्ध किया और अपने पिता के तुल्य युद्ध में असाधारण वीरता दिखाई। हरेक युद्ध में अमरसिंह के साथ चारण रहते थे और उनके पिता की वीरता का दृष्टान्त दिखा कर सर्वदा उन्हें उत्तेजित किया करते थे। किन्तु वह उत्तेजना विफल हुई। अन्त में अमरसिंह ने जहांगीर की अधीनता स्वीकार कर ली। किन्तु वह अधीनता नाम मात्र की थी। वे अपने देश के राजा पूर्ववत् स्वतन्त्र के स्वतन्त्र बने रहे। वे जो बादशाह के निकट कर भेजते थे, बादशाह उतना अपने खजाने से और मिला कर उनके पास लौटा दिया करते थे। अमरसिंह को कभी दिल्ली जाना नहीं पड़ता था। उनके पुत्र करुण और पौत्र जगतसिंह को जहांगीर और उनकी प्राणप्रियतमा बेगम नूरजहाँ जब तब बड़े आदर से बुलाती थीं और भाँति भाँति के भूषण तथा जवाहिरात देकर उन्हें प्रसन्न करती थीं। यह सच्ची अधीनता कदापि नहीं कहला सकती, तथापि चारण क्रोध और ग्लानि से ज्ञानरहित होकर अमरसिंह को अधीन जान कर अनेक कटु वचन कह कर चल दिये। चारण की कटुवाणी से अमरसिंह लज्जित हुए और उन्होंने पिता के निकट जो अङ्गीकार किया था, उसका स्मरण करके राज्य त्याग कर वानप्रस्थ व्रत धारण किया। करुण राजा हुए।

अकबर ने जब चित्तौर क़िले को तोड़ डाला तब चित्तौर की जगह उदयपुर नाम से एक नई सुन्दर राजधानी स्थापित हुई किन्तु चारण उदयपुर में न रह कर उसी भग्न चित्तौरगढ़ में रहते थे। दो एक दिन का बीच देकर वे पहाड़ी क़िले से उतर कर नीचे

आते थे । ग्रामनिवासी लोग जो कुछ उन्हें खाने को दे देते थे, वह लेकर फिर किले में चले आते थे । इस प्रकार एकान्तवास करके वे एक तरह से पागल हो गये । पहाड़ की गुफा उनको घर का काम देने लगी । मेघ की धीरे ध्वनि से जब धरती काँप उठती थी और भूभ्रमात से जङ्गल के पेड़ हिलने डोलने लग जाते थे तब चारण को बड़ा उल्लास होता था । उनके हृदय में यह बात स्वप्नवत् प्रतीत होने लगती थी कि फिर प्रतापसिंह अकबर के साथ जूझ रहे हैं ।

राजपूत सेनागण इस तरह घूमते घामते कई एक दिनों में जाकर अर्वली पर्वत के पार हुए । अर्वली पहाड़ की अद्भुत शोभा देख कर सभी सेना चकित हो रही । पहाड़ की ऊँची ऊँची चोटियाँ मानों आसमान से बातें कर रही थीं । पहाड़ के बीच कहीं कहीं झरनों की बहार दिखाई दे रही थी । कहीं झरने का जल एकत्र होकर सरोवर सा बन गया था । कहीं नदी के रूप में प्रवाहित होकर दूर तक चला गया था ।

उन सेनागणों को जब कभी रात में पहाड़ के रास्ते से जाना पड़ता था, तब वे लोग रात को पहाड़ की जैसी कुछ विलक्षण शोभा देखते थे उसका वर्णन नहीं हो सकता । दोनों ओर पर्वत के ऊँचे ऊँचे शिखर चन्द्रमा के प्रकाश में अपनी स्वच्छता की छवि दिखला रहे हैं । आधी रात के समय मानों वे चुपचाप स्थिर भाव धारण कर योगी पुरुषों की तरह सांसारिक सकल वासनाओं को तज कर ऊपर की ओर सिर उठाये ध्यान करने बैठे हैं । गम्भीर

रात्रि में पार्श्ववर्ती पहाड़ों की शोभा देखते हुए, हृदय को उमङ्ग से भरते हुए दो पहाड़ों के बीच से सैन्यगण जाने लगे।

पहाड़ के ऊपर, नीचे, कन्दराओं में कितने ही असभ्य आदि निवासी भिन्नगण सकुटुम्ब रहते हैं। भारतवर्ष के अन्यान्य स्थानों में जैसे इनकी संख्या अधिक है, वैसे ही राजपूताने में भी। आर्य-गणों ने तलवार के जोर से खेती की समस्त उपयुक्त भूमि इन लोगों से ले ली। इस कारण आदि निवासी भील पहाड़ी प्रदेश में रहने लगे। वे लोग राजपूताने के राजाओं की अधीनता स्वीकार नहीं करते। पर तो भी मुसलमानों के साथ युद्ध के समय कितने ही भिन्न धनुष बाण लेकर पहाड़ के ऊपर चढ़ कर अनेक भाँति से राजपूतों की सहायता करते थे।

यशवन्तसिंह पहाड़ लाँघ कर सेना सहित अपने देश मारवाड़ में आ पहुँचे। मेवाड़ और मारवाड़ इन दोनों देशों को देखने ही से जान पड़ता है कि प्रकृति देवी ने दोनों देशों में कितनी विभिन्नता दे रखी है। मेवाड़ देश में जैसे ढेर के ढेर पहाड़ और भाँति भाँति के विशाल वृक्ष और हरियालियों की शोभा दीख पड़ती है। मारवाड़ में उसका विपरीत। न पहाड़ है, न पीपल, बरगद और पाकड़ आदि वृक्षों का कहीं नाम है, न कहीं उपजाऊ भूमि है, न वेगवती तरङ्गिणी नदी है, न कहीं सुन्दर सरोवर है। केवल बालुकासय ऊपर ज़मीन नज़र आती है। जिधर देखिए, उधर बालू का मैदान ही मैदान देखने में आवेगा। मारवाड़ को यदि बालू का समुद्र कहें तो कदाचित् अत्युक्ति न होगी। उस बालुका-राशि में सूर्य की प्रखर किरणों से उत्तप्त पथिकों को किञ्चित् छाया

का सुख देने वाला कोई नाम मात्र का वृत्त है तो बबूल और उसी के जोड़ के अन्यान्य छोटे छोटे वृत्त या पौदे । इस मरुभूमि पर होकर जाते समय मेवाड़ देश के सैन्यों ने मारवाड़ी सेना से परिहास करके कहा—

“आक बबूल वृत्त सुविशाल ।

अन्न बाजरा मोठ की दाल ॥

पानी का नित रहै कलेश ।

देखा मारवाड़ मरु देश” ॥

मारवाड़ियों ने गर्व के साथ उत्तर दिया—“हम लोगों की जन्मभूमि उपजाऊ नहीं है, परन्तु वीरप्रसविनी अवश्य है । मारवाड़ के निवासी राजपूतगण युद्ध करने में जैसे साहसी और शूर थे, राजस्थान के अन्य क्षत्रिय उनकी अपेक्षा विशेष साहसी थे या नहीं इसमें सन्देह है ।

इस प्रकार घूमते फिरते कई एक दिन पीछे सेनागण जोधपुर की राजधानी के सामने आ पहुँचे और सभी ने वहाँ विश्राम के लिए डेरा डाला । नरेन्द्र अपने सुहृद् गजपतिसिंह की बात याद करके एकवार राजा से भेट करने गये । राजा यशवन्तसिंह खेमे में अकेले चुपचाप उदास मुँह बैठे थे । नरेन्द्र उनके पास जा पहुँचे ।

राजा साहब की आज्ञा पाकर नरेन्द्र हाथ जोड़ कर बोले—

“महाराज ! सिप्रा नदी के किनारे आपका एक प्रिय अनुचर मारा गया है । किसी समय महाराज ने प्रसन्न होकर उसे यह मोती-माला दी थी । उसने आपके इस पुरस्कार का उचित सम्मान किया । आपकी विजयकामना से अनेक दुश्मनों को मार कर वह आप भी

सम्मुख युद्ध में मर मिटा । मृत्यु के पहले एक दिन गजपतिसिंह ने मुझे आज्ञा दी थी कि यह मोती की माला महाराज को लौटा देना ।”

राजा उस मोतीमाला को हाथ में लेकर कुछ देर तक देखते रहे, पीछे दीर्घ निःश्वास त्याग कर बोले—“हा ! गजपतिसिंह ! मारवाड़ में तुमसे बड़ कर साहसी योद्धा कोई न था । हम तुम्हारे पिता तेजसिंह को जानते हैं । सूर्य महल क़िले में हमने उनका आतिथ्य ग्रहण किया था । प्यारे गजपतिसिंह, तुम हमारे ही अनुरोध से मारवाड़ देश आये थे, और बार बार युद्ध में पिता के समान तुमने पराक्रम दिखलाया था । एक बार युद्ध में तुमने हमारी जान बचाई थी, इस कारण प्रसन्न होकर हमने तुम्हें यह मोतीमाला पुरस्कार कहकर दी थी । इस मुग़ल-युद्ध में तुमने हमारे लिए अपना जीवन त्याग कर यह माला लौटा दी । सुनो, नरेन्द्र, नदी का जल जो आगे बढ़ जाता है वह लौट कर फिर पीछे नहीं आता । राजा एक बार जिसे जो कुछ दे डालता है, वह उससे फिर वापस नहीं लेता । तुम अपने मित्र की मुक्तामाला लो, और इसे अपने कण्ठ में धारण करो । हम यह माला तुमको इसलिए देते हैं कि युद्ध के समय जिसमें तुम्हें अपने मित्र की वीरता स्मरण रहे ।”

नरेन्द्र ने राजा को शतशः धन्यवाद देकर उस माला को माथे पर चढ़ा कर कहा—“महाराज, दास का एक निवेदन है । गजपतिसिंह के दो शिशु सन्तान हैं । वे मातृहीन हैं, अब उन्हें पितृहीन भी कहना चाहिए । गजपतिसिंह ने महाराज से निवेदन करने के लिए कहा था कि महाराज उन बच्चों पर दया-दृष्टि रखें,

जिसमें समय पाकर बेटा रघुनाथ भी राजा की आज्ञा से युद्ध में प्राणदान देने को समर्थ हो। इससे अधिक उसके मङ्गल की कोई कामना उसके पिता के मन में न थी।”

यह करुणा से भरी हुई बात सुनकर राजा की आँखों में आँसू भर आये। उन्होंने कहा—“वत्स, धीरज धरो। हम गजपतिसिंह के सन्तान को अपनी सन्तान के बराबर समझेंगे, और जोधपुर की रानी माँ की तरह उन बच्चों का लालन पालन करेंगी। रानी को अभी हम लोगों के आने की खबर किसी ने नहीं दी है। हमारे दूत जाते हैं, तुम भी उनके साथ जाओ। तुम उन दूतों के साथ स्वयं रानी के पास जाकर गजपतिसिंह का वृत्तान्त कह सुनाओ और उसके छोटे छोटे से बच्चों के विषय में भी दो एक बात निवेदन करना।”

राजा की आज्ञा के अनुसार नरेन्द्र कई एक राजपूत दूतों के साथ जोधपुर के किले के भीतर गये। जिसने जोधपुर के किले को एक बार देखा है, वह कभी उसे नहीं भूल सकता। चारों ओर बालू का समुद्र है, उसके बीच में टापू की भाँति एक ऊँचा पहाड़ है, उस पहाड़ के शिखर पर जोधपुर का किला योद्धाओं के किरीट के सदृश शोभा पा रहा है। पहाड़ के नीचे एक बहुत बड़ा शहर है, शहर के भीतर दो सुन्दर तालाब हैं। पूरव ओर रानी तालाब और दक्खिन ओर गुलाब सागर स्वच्छ जल से भरे हैं। नगर की खियाँ भुण्ड के भुण्ड इन पोखरों में जल लेने आती हैं। पोखर के चारों ओर अमराई है, जिसमें आम अनार आदि भाँति भाँति के सुहावने फलवान् वृक्ष लगे हैं। नगर-निवासी लोग स्वच्छन्दता-

पूर्वक उस अमराई में घूम फिर कर अपने हृदय को आनन्दित करते हैं ।

नरेन्द्र और राजपूत दूतगण रमणीय नगर को नीचे छोड़ कर पहाड़ पर चढ़े और घड़ी भर में राजमन्दिर के सदर फाटक पर जा पहुँचे । रानी की आज्ञा के अनुसार दूतगण और नरेन्द्र ने अन्तःपुर में प्रवेश किया ।

संगमर्मर के दिव्य सिंहासन पर रानी बैठी हैं । चारों ओर परिचारिकायें खड़ी हैं । कोई पान का डिब्बा हाथ में लिये है, कोई चँवर डुला रही है, कोई आज्ञा की प्रतीक्षा से रानी के मुँह की ओर देख रही है । यद्यपि रानी का मुख-मण्डल घूँघट के भीतर छिपा है, तथापि उसके मुखचन्द्र का प्रकाश कुछ कुछ बाहर निकल रहा है । उसकी काली चिकुर-राशि में गूँथे हुए हीरा, मोती आदि अनेक रत्न तारागणों की भाँति चमक रहे हैं ।

दूतों ने हाथ जोड़ कर विनयपूर्वक डरते हुए धीरे धीरे युद्ध का संवाद सब कह सुनाया । महारानी कुछ देर निस्तब्ध हो रही, उसके मुँह से एक भी शब्द न निकला । जैसे वज्रपात और भूरी के पूर्व आकाश-मण्डल निस्पन्द हो रहता है वैसे ही वह भी निस्पन्द हो रही । पीछे वह एकाएक घूँघट हटा कर आरक्त नयनों से दूतगण की ओर देख कर बोली—कायरो ! सिप्रा नदी में तुम लोग डूब क्यों न मरे ? धिक्कार है, तुम लोगों के इस जीवन पर ! दूर हो, मेरे सामने से, अपने कायर स्वामी से जाकर कहो, युद्धक्षेत्र से भाग कर वे आप तो कलङ्कित हुए ही, किन्तु उन्होंने अपने वंश को भी कलङ्कित किया । वे अब मेरे इस पवित्र किले के भीतर न आने

पावेंगे, वे अब मेरे सामने मुँह दिखाने योग्य न रहे ।” यह कहते कहते रानी क्रोध से मूर्छित हो गई ।

सहचरीगणों के अनेक उपचार से जब रानी को कुछ चैतन्य हुआ तब वह फिर सँभल बैठी और क्रोध से ज्ञान-शून्य होकर याँ बकने लगी, क्या कहा ? वे रण-भूमि से भाग चले ? जो शत्रु से डर कर रणभूमि से भाग चले, वे क्षत्री नहीं, वे मेरे पति नहीं । मैं अब इन आँखों से उन्हें देखना नहीं चाहती । मैं मेवाड़ के राना की बेटी हूँ । जो प्रतापसिंह के वीर वंश की कन्या से व्याह करेगा, वह ऐसा भीरु कायर क्यों होगा ? यदि वे युद्ध में मुसलमानों को जीत न सके तो उन्होंने सम्मुख युद्ध में प्राण क्यों न दे दिया ? वे पराजय का टीका माथे चढ़ा कर लौट क्यों न आये ? (दूतों की ओर देख कर) अय्य ! तुम लोग अब तक मेरे सामने खड़े ही हो ? मेरे सैन्यगण कहाँ हैं ? इन दूतों को शीघ्र पहाड़ से ढकेल कर नीचे गिरा दे, और क़िले का द्वार बन्द कर दे ।”

मारे क्रोध के रानी का सारा शरीर कांपने लगा, कण्ठ रुक गया, आँखों से अग्नि के कण भरने लगे, मुँह लाल हो उठा । तब नरेन्द्र आगे बढ़ हाथ जोड़ कर गम्भीरतापूर्वक बोले—
“महारानी ! आपने हम लोगों को मृत्यु की आज्ञा दी है, हम लोग मृत्यु से नहीं डरते । किन्तु आप महाराज यशवन्तसिंह को कायर न कहें । मैंने उनको युद्ध करते देखा है, युद्ध में उनकी जैसी वीरता और साहस देखा, प्रायः फिर वैसा कभी किसी युद्ध में न देखूँगा ।”

रानी क्षण भर स्थिर दृष्टि से नरेन्द्र की ओर देखती रही । पीछे धीरे धीरे बोली, क्या सचमुच तुम्हारे स्वामी ने दुश्मनों का सामना किया था ? तुम विदेशीय हो, तुम्हारे प्राण का कोई भय नहीं । तुम युद्ध का सारा समाचार सच सच कह सुनाओ ।

नरेन्द्र ने युद्ध का सविस्तर समाचार वर्णन किया । उन्होंने राजपूत सेना का जैसा साहस देखा था, महाराज की जैसी बहादुरी देखी थी, सब कह सुनाया; अन्त में उन्होंने कहा— “जब मुग़ल-सेना ने असाढ़ी घटा की तरह चारों ओर से आकर महाराज को घेर लिया । जब धूल और धूम से युद्धक्षेत्र में अंधेरा छा गया, जब भीरु कासिमख़ाँ रण-भूमि से भाग चला, तब महाराज दुगुने उत्साह और साहस से युद्ध करने लगे । चारों ओर राजपूतों के रक्त की धारा बह चली । राजपूतों के लोहू से सिप्रा नदी का जल लाल हो गया । महाराज के पास थोड़ी सी राजपूत सेना बच रही, दगाबाज़ कासिमख़ाँ अपनी सेना साथ ले पहले ही भाग गया था । औरङ्गज़ेब और मुराद कई सहस्र सेना के साथ एकाएक महाराज पर दूट पड़ा । तब भी महाराज न घबराये, बल्कि और भी निर्भय होकर युद्ध करने लगे । उस समय राजपूत-सेना जिस वीरता से लड़ रही थी, वह किसका सामर्थ्य जो वर्णन करे । एक एक राजपूत दस दस मुसलमानों के साथ जूझने लगे । आखिर दो चार यवनों को मार और दस पाँच को घायल कर राजपूत वीर आप भी वीरगति पाने लगे । इस प्रकार राजपूतसेना की संख्या घटने लगी । मुसलमानों की जयध्वनि से धरती और

आकाश काँपने लगा । आठ हज़ार राजपूतों में आठ सौ भी न बचे, तो भी महाराज ने खेत न छोड़ा । प्रखर-प्रवाहिनी सिप्रा नदी और विन्ध्य पहाड़ राजा यशवन्तसिंह की इस वीरता के साक्षी हैं ।

नरेन्द्र की बात सुन कर रानी की आँखों में जल उमड़ आया । वह बोली—“भगवन् ! तुम धन्य हो, धन्य तुम्हारी महिमा है, मैं बार बार तुम्हें वन्दना करती हूँ । मेरे पति ने राजपूतों का नाम रक्खा, चत्रियकुल की लज्जा रक्खी । तुम्हारी इन बातों से मेरा हृदय शीतल हुआ । कहो फिर क्या हुआ ?”

नरेन्द्र—मनुष्यों का जहाँ तक कर्त्तव्य था, राजपूत वीर जहाँ तक वीरता का काम कर सकते थे राजा यशवन्तसिंह ने वहाँ तक किया । जब केवल पाँच सौ सेना बच रही, तब महाराज युद्ध करना अयुक्त जान कर हट गये ।

रानी—“हट गये ! यह कहो, न कि दुश्मन से डर कर भाग गये ! हाँ दैव ! राजा के जामाता रण-भूमि से भाग गये ।” इतना कह कर रानी दोनों हाथों से छाती पीट कर फिर मूर्छित हो गई ।

दासियाँ रानी के मुँह पर गुलाब जल छिड़कने लगीं, कोई पंखा झलने लगीं । कुछ देर में जब रानी को चैतन्य हुआ, तब वह करुणाभरे स्वर में बोली—“सखी, शीघ्र चिता तैयार करो, मेरे पति युद्ध में हत हुए, वे स्वर्गलोक में मेरे आने की प्रतीक्षा करते होंगे । मैं चितारोहण के द्वारा उनसे जा मिलूँगी । मेरे पति का नाम बँच कर जो यहाँ आया है वह वञ्चक है । दूतगण, तुम अपने साथियों को लेकर शीघ्र मारवाड़ से निकल जाओ, नहीं तो तुम लोगों को अपनी ज़िन्दगी से हाथ धोना पड़ेगा ।”

नरेन्द्र और दूतगण रानी की उस आज्ञा के अनुसार भट-
पट किले से बाहर हुए । रानी की आज्ञा से किले का द्वार बन्द
हुआ । किले से बाहर होने के समय जोधपुर के राजमन्त्री ने
उस निष्क्रान्त दूत के हाथ में एक पत्र देकर कहा—“महाराज
के पास तुम लोगों को लौट कर जाने की कोई आवश्यकता नहीं ।
यह पत्र लेकर तुम लोग शीघ्र मेवाड़ की राजधानी उदयपुर जाओ ।
वहाँ जाकर यह पत्र राना राजसिंह को देना । वे तुम लोगों को
आश्रय देंगे । हमारी स्वामिनी महारानी साहिबा की आज्ञा अलङ्घ-
नीय है । तुम लोग अब क्षण भर भी मारवाड़ देश में न ठहरने
पाओगे । महारानी की माता वहाँ हैं, इस पत्र को पाते ही वे
जोधपुर आवेंगी । उनके सिवा उनकी बेटी को कोई सान्त्वना
देकर स्थिर नहीं कर सकता ।”

इतिहास में लिखा है कि जोधपुर की रानी आठ नौ दिन
तक बावली सी बनी रही । पीछे उदयपुर से उसकी माता ने
आकर जब उसे बहुत तरह से समझाया, तब वह शान्त हुई और
यशवन्तसिंह से भेट करने को राजी हुई । यशवन्तसिंह फिर सेना
संग्रह करके औरङ्गजेब से युद्ध करने जायँगे, यह बात स्थिर हुई ।

बीसवाँ परिच्छेद ।

उदयपुर ।

मेवाड़ देश की राजधानी पूर्वकाल में चित्तौर थी, मेवाड़ अब उदयपुर है । मेवाड़ के बालुकामय मैदान और सरुभूमि का भीषण दृश्य देखते हुए फिर मेवाड़ देश में आने के कारण नरेन्द्र बहुत खुश हुए । मेवाड़ देश की हरीभरी शोभा देख कर उनके हृदय में आनन्द की तरङ्ग लहराने लगी । फिर अर्बली पहाड़ से उतर कर इस तरफ आये, फिर उन्होंने पहाड़ी नदी, झरने और सरोवर की सुषमा तथा अन्यान्य मनोहर दृश्य देखे । योंही मेवाड़ की शोभा देखते हुए वे लोग धीरे धीरे उदयपुर आ पहुँचे ।

नरेन्द्र ने उदयपुर सा सुन्दर शहर कभी नहीं देखा था । उदयपुर के चारों ओर उन्नत पर्वत, किले के नीचे रमणीय सरोवर के निकटवर्ती पहाड़ के ऊपर राजमन्दिर है, और भी कितने ही ऊँचे ऊँचे प्रासाद निर्मित हैं । सीसमहल की तो शोभा ही न्यायी है । मानों सभी सुन्दर सुहावने राजभवन साफ़ आइने में अपने सुन्दर प्रतिरूप को निहार रहे हैं ।

जोधपुर के दूतगण ने सूर्यद्वार के मार्ग से उदयपुर में प्रवेश किया । जोधपुर और उदयपुर के बीच उस समय मित्रता थी इसलिए जोधपुर के दूतों को देख कर नगरनिवासियों ने बड़ी प्रसन्नता प्रकट की । नरेन्द्र और उनके साथी दूतगण सदर रास्ते

से राजमन्दिर की ओर जाने लगे। चारणगण मङ्गल पाठ करने लगे। रास्ते के दोनों किनारे सुहागिन स्त्रियाँ पूर्ण कलश लेकर खड़ी हुईं और उन्होंने सांगलिक गीत गाकर उन दूतगणों का स्वागत किया। दूतगणों ने यथायोग्य सब को एक एक रुपया पारितोषिक देकर प्रसन्न किया।

इसके अनन्तर राजा की आज्ञा से वे आगत दूत कोठे पर बुलाये गये। संगमर्मर की सीढ़ियों को लांघते हुए सब के सब सूर्यमहल में प्रविष्ट हुए। राजा विदेशीय दूतों को भेट के लिए उसी महल में बुलाते थे। उस महल की एक दीवार में वंश के बीज-स्वरूप सूर्य की प्रतिमूर्ति खुदी हुई थी, उसी से वह भवन सूर्य-महल के नाम से पुकारा जाता था।

रत्नजटित स्वर्णसिंहासन पर बाप्पाराव के वंशविभूषण महाराजा राजसिंह बैठे हैं। स्वर्णमण्डित चाँदी के चौडंडियों पर चन्द्रातप टँगा है। उसके चारों ओर मोतियों की झालरें लगी हैं। राना के सिंहासन से कुछ दूर पर सभासद्गण बैठे हैं। चारणगण राजवंश का वर्णन कर इस श्रमरावती-तुल्य राजसभा में राना के हृदय को वीर रस से प्रभावित कर रहे हैं। ऐसे समय में जोधपुर के दूतों ने राजसभा में प्रवेश किया।

दूतों ने हाथ जोड़, विनय-पूर्वक जोधपुर का समस्त वृत्तान्त निवेदन किया। यशवन्तसिंह का युद्ध में पराजित हो देश लौट आना, महारानी का उन पर क्रोध करना, महाराज यशवन्तसिंह की दुर्दशा आदि की सारी कहानी सुना कर दूत ने जोधपुर के मन्त्री का पत्र राना के हाथ में दिया। राना राजसिंह ने सब

समाचार सुन कर यशवन्तसिंह के लिए खेद प्रकाश करके दूतों को विश्राम करने की आज्ञा दी और उन लोगों के उदयपुर में रहने के लिए सब बातों का प्रबन्ध कर देने की आज्ञा मन्त्रों को दी । कुछ ही दिनों के अनन्तर जोधपुर की महारानी की माँ उदयपुर से जोधपुर गई ।

नरेन्द्रनाथ ने कई मास उदयपुर में रह कर बड़ी खुशी हासिल की । हेमलता की प्रतिमूर्ति उसके हृदय पट पर अङ्कित थी । उस की चिन्ता नरेन्द्र के चित्त में हमेशा बनी रहती थी । तथापि इस रम्य स्थान में रहने के कारण उसकी चिन्ता कुछ घट चली । उदयपुर से थोड़ा दूर पर अनेक युद्धस्थल हैं, अनेक कीर्तिस्थम्भ हैं, अनेक देवस्थान हैं । नरेन्द्र ने एक एक कर जितने दर्शनीय स्थान थे सभी देखे । कभी अकेले, कभी दीवाना तातारदेशीय बालक को साथ लेकर नरेन्द्र पहाड़ की सैर करते, कभी सरोवर के तट पर घूमते, कभी युद्धक्षेत्र में घूमते, कभी पर्वत की विचित्र गुफाओं को देख कर चकित होते । कभी सबेरे से दोपहर दिन तक, कभी दोपहर से सायंकाल तक पर्वतस्थली में घूमते थे । सुबह से खेलते हुए राजपूतों के छोटे छोटे बच्चे उस अपरिचित भ्रमणकारी युवा को उँगली से दिखला कर परस्पर एक दूसरे से उसका परिचय पूछते । साँझ को जब राजपूत रमणीगण सरोवर से कलश में जल भर कर घर लौटती थीं, तब वे उस विदेशी को चारण जान कर प्रणाम करती थीं ।

दीवाना भी चुपचाप नरेन्द्र के साथ साथ घूमता, और पास के पेड़ से उनके लिए फल फूल तोड़ कर ला देता । साँझ को नरेन्द्र

जब जलविहार करना चाहते तब वह उन्हें नाव पर सवार कर अपने हाथ से नाव खेता था। नाव धीरे धीरे सरोवर के गम्भीर जल में धँस चलती थी। उस समय निर्मल आकाश की शोभा और सरोवर की निस्तब्धता देख कर नरेन्द्र का हृदय शान्तिभाव से भर जाता था। कभी वह बालक मधुर स्वर में गीत गाता था। और नरेन्द्र के दिल को बहलाता था। उसका वह कोमल कण्ठ-स्वर शान्त सरोवर, आकाशमण्डल और पहाड़ों में गूँजने लग जाता था। तातारी भाषा का वह गीत नरेन्द्र की समझ में न आता था। पर उस गीत के दो एक शब्द सुन कर वे इतना समझते थे कि यह प्रेम का गान है। हा ! अभागो, उन्मत्त बालक ! तू इतनी ही थोड़ी सी उम्र में प्रेम के कारण इतना बावला बन गया ? प्रेम का उन्माद न होता तो तू पागल क्यों बनता ? तेरी आँखें ही क्यों ऐसी अस्वाभाविकप्रभा धारण करतीं ? अपने घर बार को छोड़ कर तू देश देश घूमता ही क्यों ? तू जो कुछ है, पर है तू नरेन्द्र की सेवा के उपयुक्त भृत्य।

चाँदनी रात में उस सरोवर के खच्छ जल की शोभा क्या ही विलक्षण देख पड़ती थी। चन्द्रमा का प्रकाश तरङ्ग में नृत्य करता हुआ देखने में बड़ा ही सुन्दर मालूम होता था। ठंडी हवा धीरे धीरे बह कर उस तरङ्गमाला को मानो बार बार चूम रही थी। नरेन्द्र नाव पर लेटे हुए चारों ओर के पर्वतों की शोभा, अनन्त आकाश की निर्मल नीलिमा देख देख कर हृदय में अपूर्व आनन्द का अनुभव करते थे। बीच बीच में उन्हें बाल्यकाल की कोई कोई बात स्मरण हो आती थी। उसके साथ हेमलता का भी स्मरण

हुए बिना नहीं रहता था । हेमलता का स्मरण होते ही अलक्षित रूप से आँसू बह कर योद्धा के दोनों गालों को भिगो देता था ।

इसी तरह कई महीने गुज़र गये । आखिर आश्विन का महीना आया । चारों ओर देवीपूजा की धूम मच गई ।

इक्कीसवाँ परिच्छेद ।

शारदी पूजा



रद ऋतु आ पहुँची । राजपूताने में युद्ध का समय यही उपयुक्त समझा जाता था । इस लिए रज-वाड़ों में देवीपूजा के साथ साथ खड्ग की पूजा भी होती थी । नरेन्द्रनाथ ने दसहरे के अवसर पर दस दिन तक उत्तरोत्तर जो महोत्सव देखा, उसका वर्णन नहीं हो सकता । पूर्वजों ने जिन सब आयुधों को लेकर युद्ध में विजय प्राप्त किया था, या हत होकर वीरगति पाई थी, राजपूतगण बड़े उत्साह से उन आयुधों की पूजा करने लगे । श्रीदुर्गा जी के मन्दिर में हिंसाप्रियों की ओर से दस दिन तक बराबर भैंसे और छागों की बलि पड़ती ही रही । विजयदशमी के दिन बड़े समारोह से दुर्गा देवी की पूजा हुई । उसके एक दिन बाद महाराना अपनी समस्त सेना को सजधज कर रङ्गस्थल में उपस्थित हुए । उस दिन उदयपुर में जिधर देखिए, उधर ही शोभा-समुद्र की तरङ्ग लहरा रही थी । हाट, बाट, गली, चौहट्टे, घाट आदि सभी स्थान माङ्गलिक पदार्थों से सजाये गये थे । जहाँ तहाँ फूलों की माला और हरित नवपल्लवों से अलङ्कृत कदलीस्तम्भों की श्रेणियाँ अपूर्व ही शोभा प्रकट कर रही थीं । घर घर में उत्सव छा रहा था । सभी के द्वार पर तोरण बन्दनवार और पताका फहरा रही थीं । विजय का नक्कारा और भाँति भाँति के बाजों गाजों के साथ

राजपूत सैन्यगण अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित हो रङ्गस्थल की ओर जा रहे थे । उदयपुर के वशवर्ती अनेक स्थानों से अनेक सेनापति अपनी अपनी सेना को साथ ले क्रीड़ास्थल में इकट्ठे हो रहे हैं । विविध स्थानों के लोगों के विविध प्रकार के परिच्छद, विविध प्रकार के अस्त्र शस्त्र और चित्र विचित्र पताकाओं से उदयपुर का रङ्गस्थल शोभायमान हो रहा है । पन्द्रह हजार राजपूत योद्धा महाराना को चारों ओर से घेरे खड़े हैं । सेना मण्डली के बीच में महाराना सूर्यवत् देदीप्यमान हो रहे हैं ।

राजपूत वीरों का युद्धकौशल देखने के लिए सबेरे से लेकर सायंकाल तक रङ्गस्थल में दर्शकों की अपार भीड़ लग गई । नगर-निवासी आबाल वृद्ध उथल पड़े । क्रीड़ास्थल के चारों ओर लोग पर लोग गिरे पड़ते थे । कोसों का मैदान लोगों से ठसाठसा भर गया । परन्तु प्रबन्ध ऐसा उत्तम था, जिससे सभी को तमाशा देखने का सुभीता था, सभी लोग चैन से तमाशा देख रहे थे । रानी की आज्ञा पाकर सैन्यगण तीरनिक्षेप, शक्तिप्रक्षेप (बरछा चलाना) और खड्गप्रहार तथा अश्वपरिचालन में अपना अपना कौशल दिखलाने लगे । इसी प्रकार मेवाड़ के विविध स्थानों से आगत सामन्तगण और दुर्ग के नेता राजपूतगण अपना अपना रण-कौशल अलग ही दिखलाने लगे । चन्दावत्, जगावत्, राठौड़, पवार और भालावंशी आदि अनेक प्रधान प्रधान क्षत्री आज उदयपुर राना के निकट राजभक्ति, युद्ध-कौशल दिखलाने आये हैं । उन लोगों के निज निज चारणगण उनके वंश गौरव का गान गा रहे हैं । नरेन्द्र दिन भर यों ही कृत्रिम युद्ध का उत्सव देख कर और

चारणगणों का गान सुन कर पुलकित होते रहे। अब भी रजवाड़ों में शारदी पूजा के अन्तिम दिन ऐसे ही उत्सव मनाया जाता है। अब भी राजपूत योद्धागण दसहरे के दिन अपने अपने राजा के निकट एकत्र होकर युद्ध-कौशल दिखलाते हैं। अद्यावधि नगर-निवासी राजपूतगण देवीपूजा के विसर्जन के दिन क्रीड़ा-स्थान में इकट्ठे होकर पहले देशाधीश राजा की भक्ति दिखलाते हैं। इस उपन्यास के रचयिता लिखते हैं कि राजस्थानों में घूमते समय उन्होंने दसहरे के अवसर पर खड्गपूजा आदि अनेक महोत्सव होते अपनी आँखों देखा है। उन्होंने भुण्ड के भुण्ड नरनारियों को किसी एक निर्दिष्ट स्थान में एकत्र होकर राजभक्ति प्रकट करते और प्राचीन नियमों के अनुसार स्वेच्छाधीन राजपूतों को दसहरे का आनन्दोत्सव मनाते देख कर अपनी आँखों को तृप्त किया था।

दिन भर योंही भांति भांति के महोत्सव देख कर नरेन्द्रनाथ ने सन्ध्या समय एक पेड़ के नीचे बैठ कर कुछ फलमूल आहार करने का उद्योग किया और समीपस्थ कुएँ से पानी लाने गये। कुएँ के पास एक व्यक्ति गोस्वामी का भेष धारण किये खड़ा था। वह भी पानी लाने गया था। वह नरेन्द्र को कुछ कठोरतापूर्वक दूर हटा कर पहले स्वयं जल भरने लगा।

गोस्वामी का यह अशिष्ट व्यवहार देख कर नरेन्द्र ने क्रुद्ध होकर दो एक कटुवचन कहे। गोस्वामी ने उसकी अपेक्षा दुगुने कटुवचनों का प्रयोग करके कहा—“तू किस देश का रहने वाला है? राजस्थान में आकर राजपूतों के साथ झगड़ते तुझे डर नहीं लगता ?

नरेन्द्र—“मैं किसी देश का रहने वाला क्यों न होऊँ, किन्तु मैं बहुत दिनों से राजपूतों के साथ रह चुका हूँ । तुम्हारे ऐसा अभद्र राजपूत एक भी देखने में न आया ।

गोस्वामी—“यदि राजपूतों के साथ रह चुके हो, तो जानते ही होगे कि राजपूत मात्र तलवार चलाना जानते हैं; इसलिए चुप हो रहे ।”

नरेन्द्र—“तुम बड़े गर्विष्ठ मालूम होते हो । मैं भी ढाल तलवार चलाने की शिक्का कुछ पा चुका हूँ । मेरे निकट गर्व न करो । मैंने सिर्फ गोस्वामी जान कर इस दफे चमा की ।”

बात ही बात में विवाद बढ़ने लगा । गोस्वामी बहुत बिगड़े, यहाँ तक कि नरेन्द्र को मार बैठे । नरेन्द्र ने भी उन्हें मारा । थोड़ी ही देर में दोनों क्रोध से ज्ञान-शून्य होकर ढाल-तलवार ले लड़ने को उद्यत हो गये । तब कुछ कुछ अँधेरा सा हो गया था । वह जगह लोगों से खाली हो गई थी । सब लोग वहाँ से पहले ही चले गये थे ।

दोनों भिड़ गये । दोनों में युद्ध होने लगा । कुछ देर तक दोनों अपनी अपनी घात बचा कर बड़े वेग से लड़े । आखिर नरेन्द्र पराजित हुए । उस बलवान असीम साहसी गुसाईं के प्रचण्ड आघात से नरेन्द्र के हाथ की तलवार धरती पर जा गिरी । नरेन्द्र खुद भी गिरे ।

गोस्वामी ने कड़क कर कहा—“अन्य देशीय योद्धा ! तू अभी बालक है, जा, तेरा अपराध मैंने माफ़ किया । फिर कभी राजपूत गुसाईं के साथ भगड़ा न करना । गुसाईं अपने जीवन को केवल

पूजापाठ ही में नहीं बिताते, वे कुछ कुछ युद्ध करना भी जानते हैं ।

नरेन्द्र ने कठोर स्वर में उत्तर दिया — “मैं तुमसे जीवन-भित्ता नहीं चाहता । तुम्हारी जो इच्छा हो, जो तुम्हारे जी में आवे करो, मैं तुम्हारा अनुग्रह नहीं चाहता ।”

गोस्वामी ने गम्भीरतापूर्वक कहा — “वीर बालक ! मैं भी कभी कभी योद्धा का काम करता हूँ । योद्धा से योद्धा को कुछ माँगने में अपमान की कोई बात नहीं । नरेन्द्र ! मैं तुमको पहचानता हूँ । तुम भी मुझको शीघ्र जानोगे । मुझसे प्राण-दान की भित्ता लेने में तुम कुछ भी अपना अपमान न समझो । तीन दिन के भीतर ही फिर तुमसे मेरी भेट होगी । उस दिन मैं भी तुमसे कुछ याचना करूँगा । मेरा नाम शैलेश्वर है ।”

यह कह कर गोस्वामी अन्धकार में न मालूम किधर गायब हो गये । नरेन्द्र चुब्ध हो रहे ।

बाईसवाँ परिच्छेद ।

एकलिङ्ग महादेव का मन्दिर ।


 जपूताने के नये नये स्थान, नये नये आचार-व्यवहार देख कर नरेन्द्रनाथ का हृदय कुछ दिन शान्त रहा, परन्तु पत्थर पर जो चिह्न खुद जाता है, वह एक बार ही विलुप्त नहीं होता । वङ्गदेश से उदयपुर का कई सौ कोस का फासला है । कितने नद, नदियाँ, जङ्गल, पहाड़ और मरुभूमि पार करके नरेन्द्र भारतवर्ष के एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में आये हैं । पर इतनी दूर आने ही से क्या ? प्रातः-काल पूरब ओर आकाश-मण्डल में जब वे सूर्य की लालिमा देखते थे तब उनके हृदय में पूर्वदेशवासिनी बालिका का स्मरण होता आता था । रात को जब नरेन्द्र अकेले छत के ऊपर टहलते थे तब उन्हें जान पड़ता था जैसे वह प्रणयमूर्ति तारा की ज्योति में उनको प्रेम-दृष्टि से ताक रही है । कहाँ वीरनगर का विशाल भवन, कहाँ कोमल कलनादिनी गङ्गा का निर्मल प्रवाह ! और कहाँ ये बेचारे विरही नरेन्द्रनाथ ? क्या अपने देश से भाग कर अन्यत्र जाने से चिन्ता हट सकती है ? जहाँ चाहो, भले ही भाग कर जाव, चिन्ता पीछे लगी ही जायगी । मृत्यु के पहले एक बार नरेन्द्र हेमलता को देखना चाहते हैं । वे सबेरे, साँझ, आधीरात को मन ही मन जो कुछ सोचते हैं, वह एक बार हेमलता से कहेंगे, यही

उनकी एकमात्र इच्छा है । मृत्यु के पूर्व क्या नरेन्द्र को एक बार हेमलता से फिर भेट न होगी ? नरेन्द्र ने तारार के पगले बालक से सुना था कि एकलिङ्गेश्वर महादेव के मन्दिर में एक महात्मा रहते हैं, वे भविष्य बतलाते हैं । नरेन्द्रनाथ एक दिन उस मन्दिर की ओर चले ।

पहर रात बीतते बीतते नरेन्द्र मन्दिर के निकट आ पहुँचे । मन्दिर की अलौकिक शोभा देख कर उनके आश्चर्य की सीमा न रही । एक पहाड़ की तराई में मन्दिर शोभायमान है । उसके चारों ओर जहाँ तक दृष्टि जाती है, केवल महाउत्तुङ्गशैल शिखर दीख पड़ते हैं । मानो प्रकृति ने चारों ओर अलङ्घ्य प्राचीरों से वेष्टित करके बीच में शङ्कर के उपयुक्त गृह निर्माण किया है ।

आधीरात को नरेन्द्र ने उस प्रकाण्ड मन्दिर में प्रवेश किया । मन्दिर के सामने उजले पत्थर के बने हुए खम्भों पर सभामण्डप खड़ा था । मन्दिर के द्वार पर महादेव के वाहन और नन्दी की प्रतिमूर्ति पीतल की बनी हुई विराज रही थी । मन्दिर के मध्यवर्ती प्रकोष्ठ के भीतर दीपावली से श्वेत पत्थर की दीवाल जगमगा रही थी । सुगन्ध से सारा घर महँक रहा था । बीच में महादेव की प्रस्तरनिर्मित प्रतिमूर्ति प्रतिष्ठित थी । मन्दिर के रक्षक एक दीर्घकाय, तेजस्वी, जटाधारी गुसाईं एक तरफ़ आसन जमाये बैठे थे । उनके प्रशस्त ललाट पर त्रिपुण्ड्र-भस्म द्वितीया के त्रिगुण चन्द्र की भाँति शोभा दे रहा था । विशाल कन्धे पर जनेऊ लटक रहा था । और दो चार गोसाईं इधर उधर टहल फिर रहे थे । इस मन्दिर के प्रधान गोस्वामी विवाह नहीं करते । उनकी मृत्यु के पीछे शिष्यों

में कोई एक योग्य व्यक्ति उस पद पर नियुक्त होता है । मन्दिर के खर्च के लिए कई एक गांव बतौर ज़मींदारी के मुक़रर थे । उसके सिवा यात्रियों से भी कुछ कम आमदनी न थी ।

आधीरात के समय घण्टानाद से वह विशाल, सुन्दर, शिला-निर्मित शिवमन्दिर गूँज उठा । “बम् बम् हर हर” शब्द से समस्त मन्दिर भर गया । तदनन्तर गीत-वाद्यों के साथ महादेव की स्तुति प्रारम्भ हुई । नवयौवना नर्तकीगण ताल के साथ नाचने लगीं, गायकगण तानपूरा हाथ में लेकर शङ्कर का भजन बड़े प्रेम से गाने लगे । कुछ देर में गाने बजाने का अध्याय पूरा हुआ । उस जटा-धारी गुसाईं का इशारा पाकर वे नर्तकीगण चली गईं । गवैयां ने राग अलापना बन्द किया । रौशनी कम कर दी गई । पूजा का प्रसङ्ग समाप्त हुआ । नरेन्द्र उस अन्धकार में किंकर्तव्यविमूढ़ होकर खड़े रहे ।

कुछ देर पीछे उन्हें मालूम हुआ, जैसे अँधेरे में वह लम्बा जटावान् गुसाईं उनको इशारे से बुला रहा हो, नरेन्द्रनाथ उसी तरफ़ गये । नरेन्द्र ने गुसाईं के पास जाकर पूछा—“क्या आप इस मन्दिर के प्रधान व्यक्तियों में हैं ?” गोस्वामी इस प्रश्न का कुछ उत्तर न देकर ओठों पर अँगुली रख कर चुप हो रहे । इसके अनन्तर उन्होंने अँगुली से एक ओर दिखलाया, नरेन्द्र ने उधर देखा, पर उन्हें उस गाढ़ अन्धकार में कुछ दीख न पड़ा । फिर उन्होंने गौर करके देखा, इस दफ़े उनको मालूम हुआ जैसे कुछ दूर पर एक चिराग़ जलता हो । गुसाईं नरेन्द्रनाथ को इशारा देकर आप

आगे आगे चले । नरेन्द्र उनका आशय कुछ न समझ कर भी उनके पीछे पीछे चले ।

दोनों उस आँधरे में बहुत दूर तक निकल आये । इस अन्धकार में ये मौनावलम्बो महात्मा पुरुष कौन हैं ? इनका मतलब क्या है ? शैवगण कभी कभी नरबलि से पूजन किया करते थे । क्या इन दीर्घकाय बलिष्ठ योगी का भी वही अभिप्राय तो नहीं है ? नरेन्द्र एक बार ठिठक कर खड़े हो रहे । फिर उन्होंने तलवार के कब्जे पर हाथ रख कर सोचा—“क्या मैं कायर हूँ जो इस शान्तमूर्ति योगी के साथ जाने में हिचकता हूँ ?” वे निर्भीक होकर फिर धीरे धीरे गुसाई' के साथ उस घोर अन्धकार में जाने लगे ।

बहुत देर पीछे शैव गोस्वामी ने एक पहाड़ की गुफा में प्रवेश किया । नरेन्द्र भी उसके साथ गुफा के भीतर घुसे । गुफा में उन्होंने जो कुछ देखा, उससे उनके आश्चर्य की सीमा न रही ।

सामने करालवदना काली की भयङ्कर मूर्ति थी । उसके समीप सूखा काठ धधक रहा था । उसका प्रकाश गुफा में चारों ओर फैल रहा था । अग्नि के पास की शिला पर लोगों की कुछ हस्त-लिपि लिखी थी । एक जगह लोहू से भीगा हुआ खज्ज रक्खा था । और नीचे का पत्थर कहीं कहीं लोहू से लाल था । उस गहर में एक ऐसा शब्द सुनाई देता था, जैसे दूर से जलप्रवाह का शब्द सुन पड़ता है ।

गुसाई' का स्वरूप विचित्र था । उसकी किञ्चित् सफ़ेद लम्बो दाढ़ी छाती के नीचे तक लटक रही थी; जटा का बोझ

पीठ पर झूल रहा था । शरीर बहुत लम्बा, बलिष्ठ और अत्यन्त तेजोमय भासित होता था । उनकी दोनों आंखें उस अग्नि के प्रकाश में तारे की भाँति चमक रही थीं । ऊँचे ललाट पर त्रिपुण्ड्र चन्दन एक अपूर्व ही शोभा का विस्तार कर रहा था ।

गुसाईं ने जलते हुए काठ को बुझा दिया । पीछे उसने वह रुधिराक्त खड्ग को हाथ से उठा लिया । नरेन्द्र ने आग की धुँधली रौशनी में गुसाईं को खड्ग उठाते देखा । गुसाईं का स्वरूप और भी भयङ्कर देख नरेन्द्र भौंचक से हो रहे । वे किसी तरह दो एक पग पीछे हट कर गुफा के शिलाखण्ड में पीठ अड़ा कर खड़े हुए । गुसाईं की नियत अच्छी न देख कर उन्होंने म्यान से तलवार खींच ली । वे साहस पर भरोसा करके बड़ी सावधानी से खड़े रहे । किन्तु उनके हृदय की धड़कन एकदम निःशेष न हुई ।

गुसाईं ने अतिशय गम्भीर स्वर से पुकारा—“नरेन्द्र !”

नरेन्द्र ने इतनी देर बाद समझा, यह शैव दूसरा कोई नहीं, वही उदयपुर का प्रतिद्वन्द्वी योद्धा—शैलेश्वर है ।

तेईसवाँ परिच्छेद ।

पर्वत की गुफा ।



शैलेश्वर ने कहा—“नरेन्द्र ! एकलिंगेश्वर महादेव के मन्दिर के गुसाईं लोग योगबल से मनुष्यों के हृदय की बात जान सकते हैं । तुम अपने हृदय में कुछ पाप की वासना लेकर इस पवित्र मन्दिर में आये हो । तुम्हारे मन में कोई पाप की चिन्ता है ।”

नरेन्द्र—“मैं नहीं जानता कि आप कौन हैं; आपकी बातों का उत्तर देने को मैं बाध्य नहीं हूँ ।”

शैलेश्वर—“मैं एकलिंगेश्वर महादेव के मन्दिर का महन्त हूँ । मन्दिर अपवित्र करने वालों से पूछने का मेरा अधिकार है ।”

नरेन्द्र—“आपने मुझको कैसे जाना ? आपने मुझ में पाप का कौन सा चिह्न देखा है ? यह मैं नहीं जानता ।”

शैलेश्वर—“इस मन्दिर में छल प्रपञ्च की बात नहीं चलती । यहाँ अपने दोषों को छिपाने की चेष्टा करना वृथा है । एक रमणी के प्रेम में मुग्ध होकर उसके पुनः दर्शन की लालसा से तुम यहाँ आये हो ।”

नरेन्द्र—“मान लीजिए कि यही बात सच है, तो इसमें पाप क्या है ? गोस्वामीगण यद्यपि रमणी के प्रेम से बचे रहते हैं, तथापि रमणी के प्रेम की इच्छा पाप नहीं है । साक्षात् शङ्कर ने पार्वती के प्रेम में अपने को उलझा रक्खा है ।”

शैलेश्वर—“देखो नरेन्द्र ! यह ठगपने की जगह नहीं है, तुम इस तरह क्यों आंखों में धूल भोंक रहे हो ? तुम केवल रमणी के प्रेमाकांक्षी नहीं हो बल्कि यह कहो कि परस्त्री के प्रेम के लोलुप हो, हा, संसार में ऐसी कौन घोर यन्त्रणा है ! कौन ऐसी तीव्र ज्वाला है, जिससे इस पाप का प्रायश्चित्त हो सकता है ।”

नरेन्द्र—“जब मैं एक बालिका को हृदय से प्यार करता था, तब वह अविवाहिता थी । अब यदि वह किसी के साथ व्याही गई है तो वह अवश्य विस्मरणीय है ।”

शैलेश्वर—“नरेन्द्र, न तुम अपने को भुलाओ, न मुझी को धोखे में डालने की चेष्टा करो । जिस घोर पाप में तुम लिप्त हुए हो, उसे अच्छी तरह विवेचना करके देखो । रमणीय गङ्गा के तटस्थ उस उच्च अट्टालिका का स्मरण करो । पवित्रात्मा रमेशचन्द्र और पवित्रहृदया हेमलता के पवित्र संसार को तुम क्यों बिगाड़ना चाहते हो ? क्या तुम रमेशचन्द्र का सर्वनाश करना चाहते हो ? पापिष्ठ ! तुम चाहते हो, वह हेमलता तुम्हारी होकर रहे । वह कमलनयना स्वच्छहृदया हेमलता जो बाल्यकाल में तुम्हारे साथ खेलती थी, अब भी जो सगी बहन की अपेक्षा तुम पर अधिक स्नेह रखती है, तुम्हारे लिए चिन्ता करती है । वह स्नेहमयी पतिव्रता रमणी कुलटा होकर तुम्हारी सेवा करेगी ? सती के ललाट पर कुलकलङ्किनी, व्यभिचारिणी शब्दों का टीका चढ़ेगा, उसका उज्ज्वल यश कालिख से पोता जायगा; और तुम्हारे कारण उसका बसा बसाया घर खाक में मिल जायगा, क्या नरेन्द्र ! तुम यही चाहते हो न ? अपने को पाप के गड्ढे में मत गिराओ । यह सच

है कि तुम इतनी दूर की बात नहीं सोचते हो । किन्तु तुम्हारा जो मनोरथ है, उसके पूर्ण होने पर इसके सिवा और क्या होगा ? क्या हेम के साथ तुम्हारा विकृत प्रेम नहीं है ? क्या उसके प्रति तुम्हारी बुरी वासना नहीं है ? नरेन्द्र, सच कहो । तुम यही पाप-मनोरथ लेकर इस पवित्र मन्दिर में आये हो न ?”

शैलेश्वर का कथन समाप्त हुआ । पर नरेन्द्र के कानों में उनकी यह आखिरी बात मानो अब तक गूँज रही है । नरेन्द्र बड़ी देर तक सिर नीचा करके चुपचाप खड़े रहे । उनका शरीर काँप रहा था । सोचते सोचते उनका क्रोध ठंडा हुआ । उनकी आँखों से दो वूँद आँसू टपक पड़े । पीछे वे दीर्घनिश्वास त्याग कर धीरे धीरे बोले—“स्वामीजी, मैं सचमुच बड़ा पापी हूँ । मेरे लिए आप जो उचित दण्ड समझे दे ।”

शैलेश्वर—“वत्स ! इस संसार में ऐसा कोई रोग नहीं, जिसकी चिकित्सा न हो । ऐसा कोई पाप नहीं जिसका प्रायश्चित्त न हो । मैं तुम्हारे पाप का संशोधन चाहता हूँ न कि तुम्हारे पाप का दण्डविधान चाहता हूँ ।”

नरेन्द्र—“महाराज ! मैं दया के उपयुक्त पात्र नहीं हूँ । जो पापिष्ठ हेमलता के सदृश पवित्र मूर्ति के अपकार की इच्छा करे, उसका इस जीवन में प्रायश्चित्त नहीं ।”

शैलेश्वर—“नरेन्द्र, तुम अपने को जितना पापी समझते हो, उतने नहीं हो । मुझ से तुम्हारी कोई बात छिपी नहीं है । तुम हेमलता को पाने की इच्छा नहीं रखते । केवल उसे एक बार फिर इस ज़िन्दगी में देखना चाहते हो । यह आशा तुम्हारी पूरी होगी

या नहीं यही जानने के लिए तुम इस देवालय में आये थे । किन्तु अभी तुम बालक हो, तुम यह नहीं जानते कि अब एक बार उस पर तुम्हारी दृष्टि पड़ने से उसका सर्वनाश होने की सम्भावना है ।

नरेन्द्र—“आपने जो कुछ फ़रमाया, बहुत सही है । हेमलता की हानि करना तो दूर रहे हम उसके पसीने की जगह अपना खून तक दे सकते हैं । उसके शरीर का काँटा निकालने के लिए हम प्राण दे सकते हैं । इसे अन्तर्यामी भगवान् जानते हैं ।”

शैलेश्वर—“तो उसके हृदय में जो काँटा तुमने चुभा रक्खा है, उसको खींच लेने का प्रयत्न क्यों नहीं करते ?”

नरेन्द्र—“कैसे प्रयत्न करूँ ? प्रभो, आज्ञा दीजिए ।”

शैलेश्वर—“लड़कपन से ही तुम उसके कोमल हृदय में प्रेम का काँटा लगा चुके हो, उसे उखाड़ लो । अभी न उखाड़ लोगे तो उसकी जड़ दिन दिन मज़बूत ही होती जायगी । हेमलता का जीवन, जीवन की गिनती में न रहेगा । उसने अब सुचरित्र धार्मिक पति पाया है । सुख के संसार में अभी उसने पैर ही रक्खा है । केवल कभी कभी उसके मन में तुम्हारी चिन्ता होती है । जिस समय वह तुम्हारा सोच करती है, उस समय वह अपने पति के निकट विश्वासघातिनी बन जाती है । उसकी चिन्ता तुम दूर करो ।”

नरेन्द्र—“कैसे दूर करूँ ? आप कहते हैं, मेरे देखने ही से उसका सर्वनाश होगा ।”

शैलेश्वर—“उसका उपाय है । यह तो तुम भलीभाँति जानते हो कि किसी न किसी दिन हेमलता के साथ हमेशा के लिए

तुम्हारा विच्छेद होगा ही । नरेन्द्र, यदि तुम हेमलता को सच्चे दिल से प्यार करते हो, यदि उसके कण्टकोद्धार के लिए तुम यथार्थ में अपना प्राण दे सकते हो तो जितेन्द्रिय होकर स्त्री-विषयक चिन्ता त्याग करो । कदाचित् तुम इन्द्रिय का निग्रह न कर सको तो यवनवालिका से व्याह करो । हेमलता जब यह सुनेगी कि नरेन्द्र मेरे बाल्यकाल का प्रेम भूल कर योगी हो गया है, या विधर्मी होकर दूसरी स्त्री का ग्रहण किया है तब उसके हृदय का भाव ज़रूर धीरे धीरे बदल जायगा । मनुष्य का हृदय इतना सरस नहीं होता कि लता की भांति सूखे काठ में लिपटा रहे । जो अपने प्रेमी को एकदम बिसरा देता है, जिसका मानसिक भाव, आशा, उद्देश, चिन्ता और प्रणय अन्य रूप धारण करते हैं, उस पर किसी का प्रेम चिरकाल तक नहीं बना रहता । नरेन्द्र ! तुम्हारे विषम पाप का यही विषम प्रायश्चित्त है ।”

नरेन्द्र—“भगवान् जानते हैं । मैं उसके उपकारार्थ अनेक क्लेश भेल सकता हूँ । किन्तु आपने जो मेरे पाप का प्रायश्चित्त बतलाया है, वह असह्य है । यह औषध बड़ी ही कड़वी है । कोई दूसरी दवा की व्यवस्था कीजिए ।”

शैलेश्वर—“कठिन रोग में तीव्र औषध का प्रयोग आवश्यक है ।”

नरेन्द्र—“स्वामी जी ! आप परम धार्मिक शैव होकर मुझे मुसलमान होने का परामर्श देते हैं ?”

शैलेश्वर—“पाप के कारण मनुष्य को पशुजन्म तक ग्रहण करना पड़ता है । तुम केवल जातिच्युत होने ही में डरते हो ?”

इसके बाद दोनों बड़ी देर तक चुप रहे । नरेन्द्र गाल पर हाथ रख कर आग के आँगारे की ओर निर्निमेष नेत्र से देखते हुए मन ही मन कुछ सोचने लगे । शैलेश्वर उस गुफा में धीरे धीरे टहलने लगे ।

पीछे शैलेश्वर ने बड़ी गम्भीरता से कहा—“नरेन्द्रनाथ ! तुम मुझ पर विश्वास करो ।”

नरेन्द्र—“आप मेरी तलवार ले लें, इससे बढ़ कर मैं अपने विश्वास का दूसरा क्या प्रमाण दे सकता हूँ ।”

शैलेश्वर—“तो एक बात और तुमसे कहता हूँ, सुनो, प्रेम स्त्रियों का एकमात्र अवलम्बन है । प्रेम स्त्रियों का जीवन है, प्रेम ही उनके प्राण का आधार है । किन्तु पुरुषों के लिए यह बात नहीं है । पुरुषों के नारीप्रेम की अपेक्षा अनेक उच्च अभिलाष और अनेक महान् उद्देश हैं । तुम अभी युवा हो, साहसी हो, और देशाभिमानी हो । क्या इस संसार में तुम अपने शस्त्र की सहायता से अपने अक्षय्य सुयश के पथ को परिष्कृत नहीं कर सकते ? क्या अवलागणों की भाँति केवल रोकर ही अपना जीवन व्यतीत करना चाहते हो ? सुनते हैं, तुम्हारा वङ्गदेश वीरशून्य—प्रताप-शून्य—और यशःशून्य हो रहा है । जाओ, नरेन्द्र ! तुम उस दूर देश वङ्गाल में जाकर यशःस्तम्भ स्थापित करो, अपने देश और अपनी जाति का गौरव बढ़ाओ, सिंह के समान पराक्रम प्रकट कर अपनी कीर्ति स्थापित करो । इस महत्त्व के काम में तुम अपना जीवन समर्पण करो । स्वर्ग में कोई ऐसा देवता नहीं, जो इस महत्त्व के कार्यसाधन में तुम्हारी सहायता न करेंगे; स्वयं वज्रायुध पुरन्दर और शूलपाणि शङ्कर तुम्हारी मनःकामना पूर्ण करेंगे ।”

यह कह कर शैलेश्वर चुप हो रहे । नरेन्द्र टकटकी बाँध कर उस अद्भुत गुसाईं की ओर देखने लगे । उन्होंने एक दिन इस गुसाईं को जैसे युद्ध-निपुण देखा था, आज मनुष्यों के अन्तःकरण की बात जानने में भी उन्हें वैसा ही निपुण पाया ।

गुसाईं फिर कहने लगे—“नरेन्द्र ! इस घोर निशा में तुम इतनी दूर एक लिङ्गेश्वर महादेव के मन्दिर में पूजा करने आये हो, किस लिए ? क्या देश के हित साधन के लिए, या वीरव्रत में व्रती होने के लिए आये हो ? या कोई महान् इष्ट साधन की इच्छा से आये हो ? धिक्कार है, नरेन्द्र ! तुम्हारी बुद्धि पर ! तुम्हारे सदृश वीर पुरुष एक बालिका का मुँह देखने के लिए जीवन के एक महान् उद्देश को भूल जाय, यह बड़े खेद का विषय है । नरेन्द्र, तुम अपने हृदय से प्रेम की चिन्ता दूर करो । यदि बिना प्रेम के जीवन निःसार जान पड़े तो वीरोचित प्रेम को हृदय में स्थान दो । पुरुषसिंह होकर सिंही को ग्रहण करो ।”

नरेन्द्र—“प्रभो, आप, जो आज्ञा दें ।”

शैलेश्वर—“यह दुनिया बहुत बड़ी है, ढूँढ़ो, ढूँढ़ने से सब कुछ मिल सकता है । जो पीड़ा के समय सावित्री की तरह तुम्हारी सेवा करे । सङ्कट के समय नृमुण्डमालिनी भद्रकाली की भाँति तुम्हारी बगल में खड़्ग लेकर खड़ी हो । सुख के समय निश्छल प्रेम से तुम्हारे हृदय को तृप्त करे । युद्ध के समय वीरत्व-वर्धक गान से तुम्हारे शरीर को कण्टकित करे और अपूर्व उत्साह प्रदान करे । यदि ऐसी स्त्री ढूँढ़ने से मिले तो उसे स्वीकार करो ।”

नरेन्द्र—“क्या संसार में ऐसी स्त्री हैं ?”

शैलेश्वर—“तुम उस रमणी को स्वप्न देखोगे । मेरा आदेश मिथ्या न होगा । यदि ऐसी स्त्री मेरे देखने में न आती तो मैं तुमको इस गुफा में व्यर्थ क्यों बुला लाता ? एक बात और सुनो, जिस रमणी की बात मैं तुमसे कह रहा हूँ, वह हेमलता की अपेक्षा भी तुमको अधिक चाहती है । इस रमणी को तुम पहले देख चुके हो ।”

नरेन्द्र—“कब देखा, स्मरण नहीं है ।”

शैलेश्वर—“आज उसे तुम स्वप्न में देखोगे । मैं अब जाता हूँ । इस घड़े में जो मद्य है वह पीकर तुम आज यहीं सो रहो । इस बुझती हुई आग की ओर देखते रहो । जब वह आग सम्पूर्ण रूप से बुझ कर भस्मावशेष हो जायगी तब तुम स्वप्न देखोगे, स्वप्न में उस प्रणयिनी को देखोगे । वह इस संसार में एक मात्र तुम्हारे प्रेम की आकांक्षिणी है । कर्तव्य साधन में वह तुमसे कुछ कम अध्यवसाय नहीं रखती । वीर-पुरुष, वह वीर-नारी तुम्हारे योग्य है ।

नरेन्द्र—“महात्मन्, आपकी बातों से मेरा आश्चर्य्य पल पल बढ़ रहा है ।”

शैलेश्वर—“एक बात और कहता हूँ, जी लगा कर सुनो । स्वप्न देख कर तुम कल सबेरे इस गुफा से निकल कर बाहर चले जाओगे । तीन दिन की तुम्हें मोहलत देता हूँ, स्वप्न में जिस स्त्री को देखोगे, उसके साथ तुम व्याह करोगे या नहीं, इसका निश्चय तुम तीन दिन के भीतर कर लेना । यदि तुम उसके साथ व्याह करने को राजी हो तो तीसरे दिन अमावस के सायंकाल सफेद

चन्दन का तिलक लगा कर मुझ से इस गुफा में मिलना । वह बालिका कैसे प्राप्त होगी, उसका उपाय मैं बतला दूँगा । यदि उससे व्याह करना मंजूर न हो तो लाल चन्दन का टीका सिर पर लगा कर पूर्वोक्त निर्दिष्ट समय में यहाँ आकर मुझसे भेंट करना । तब मैं तुम्हारे पाप के प्रायश्चित्त की व्यवस्था करूँगा । तुम ऐसा करने की प्रतिज्ञा करो, नहीं तो भगवती तुमको स्वप्न न देगी ।”

नरेन्द्र—“मैं प्रतिज्ञा करता हूँ, तीसरे दिन सन्ध्याकाल मैं इस गुफा में आपसे मुलाकात करूँगा । इस विषय में जो आप करने के लिए आज्ञा देते हैं वह करने को मैं प्रस्तुत हूँ ।”

शैलेश्वर—“तुम वीर-पुरुष हो, तुम जो कहोगे, वह अवश्य करोगे । रात तीन पहर से ऊपर जा चुकी, मैं अब जाता हूँ ।” यह कह कर शैलेश्वर चले गये ।

चौबीसवाँ परिच्छेद ।

वीणाधारिणी ।

नरेन्द्र बहुत देर तक उस अँधेरी गुफा में घूमते रहे ।
 न वे बाल्यकाल की प्रीति को, यौवन के नवीन प्रेम
 के विरवा को सदा के लिए अपने हृदय से
 उखाड़ डालना चाहते हैं । नरेन्द्र का चित्त चिन्ता
 से डावाँडोल हो रहा था । उनके मन में क्या क्या भावनायें हो
 रही थीं, वे हम लोग कैसे जान सकते हैं ?

बहुत देर पीछे जब आग बुझने पर हुई, तब नरेन्द्र को गुसाईं
 की बात याद हो आई । घड़े में जो यज्ञावशिष्ट मद्य था, सब पी
 गये । मद्य पीने के साथ उनका सिर घूमने लगा । आग के समीप
 एक तरफ वे सो रहे ।

नरेन्द्रनाथ यद्यपि नशे में चूर थे, तथापि उनकी दृष्टि आग की
 ओर थी । देखते देखते जब आग बुझने पर हुई तब नरेन्द्र को बुझती
 हुई आग के हीन प्रकाश में उस गुफा की शोभा और भी विलक्षण
 देख पड़ी । वे गुफा की भित्ति पर प्रकाश और छाया के नृत्य में
 मानो अमानुषिक जीव का नाच देखने लगे । कालिका के दोनों नेत्र
 चमक उठे । कालिका के हाथ का खड्ग मानो नरेन्द्र की ओर
 बढ़ने लगा । नरेन्द्र डर गये, उन्होंने उठने की चेष्टा की, पर उनमें
 उठने की शक्ति न थी । धीरे धीरे नरेन्द्र की आँखें लग गईं ।

थोड़ी देर में सब आग लुप्त गई। पर नरेन्द्र ने यह न देखा। तब वे स्वप्न देख रहे थे। इतनी देर दूरस्थ जल-प्रवाह की आँति जो मन्द सुन पड़ता था, वह अब नरेन्द्र को मानो स्वर्गीय सङ्गीत ध्वनि की तरह सुनाई देने लगा। गहरे अन्धकार में मानो धीरे धीरे प्रकाश की छटा फैलने लगी। उस गुफा की दीवार से मानो एक द्वार निकल आया। उस द्वार की राह से संगीत का आश्चर्य मन्द आने लगा। सङ्गीत ध्वनि के साथ मानो चन्द्रमा का प्रकाश भी उस नवीन दर्वाजे के रास्ते से धीरे धीरे गुफा के भीतर आने लगा। यह क्या? नरेन्द्र स्वप्न देख रहे हैं, या यथार्थ ही देख रहे हैं? अलौकिक रूप राशि से विभूषित स्वर्गीय अप्सरा लो मुकु मोडरी बालिका हाथ में त्रीणा लिये हुई गा रही है। नरेन्द्र आश्चर्य से अभिभूत हो स्वप्न देखने लगे।

अहा हा ! उस षोडशी का क्या ही अनुपम रूप है, क्या ही सुन्दर नयन हैं, क्या ही प्रशस्त ललाट है, क्या ही सैर से काले केश हैं, क्या ही कोमल कृश शरीर है। यह कोई देवी है या मानवी ? नरेन्द्र ! इस नाज़नी की ओर खूब ध्यान से देखो, ऐसा चांद सा गारा मुखड़ा, ऐसे कमल से आयत नेत्र, ऐसा प्रवाल सा लाल अधर, क्या इससे पूर्व तुम ने कभी देखे थे ? दूरस्थ दूरस्थ सङ्गीत ध्वनि की आँति नरेन्द्र के हृदय में स्मृतिशक्ति जाग्रत होने लगी। पहले नरेन्द्र को काशी का युद्ध स्मरण हो आया। फिर दिल्ली का। दिल्ली का स्मरण होते ही एक गवतबालिका की स्मृति उनके सामने आ खड़ी हुई। फिर धक से उन्हें याद हो आई। अहा, यह तो वही जलेशा है !”

नरेन्द्र को कुछ सोचने का अवसर न मिला । उस प्रेमोत्पादक सरस गीत ने नरेन्द्र के हृदय को पानी पानी कर दिया । उस अप्सरा के मधुर गान से पत्थर की गुफा भी मानो पसीज चली । ज़लेखा वीणा बजाने के साथ साथ तान भी ले रही थी । उसका एक साथ ऐसा सुन्दर गाना बजाना सुन कर किसका चित्त द्रवित न होता ? उसका वह मधुर हृदयार्कषक और भावपरिपूर्ण गान सुन कर नरेन्द्र का चित्त चञ्चल हो उठा । वह निर्निमेष दृष्टि से ज़लेखा की ओर देखने लगे । गाते गाते ज़लेखा का कण्ठ रुक गया । वह रुक रुक कर गाने लगी । कुछ देर में उसका गाना ख़तम हुआ । उसकी आंखों से अविरल आंसू की धारा वह चली । ज़लेखा ने जो तातार देश की भाषा में गीत गाया था उसका आशय यह था—

स्त्री का धर्म क्या है ? पतिव्रता का कर्तव्य क्या है ? यही कि जब तक वह जिये प्रेमामृत के दान से पति की प्रेमपिपासा शान्त करे । सुख के समय गृहलक्ष्मी बन कर पूर्ण रूप से पति को प्रसन्न करे । युद्ध के समय चण्डीरूप धारण कर पति के उत्साह को बढ़ाती हुई उनके हृदय को वीररस से भर दे । जीवन के आशा-प्रदीप एक एक कर बुझ जाने पर विपद के घोर अन्धकार में समवेदना प्रकाश करके स्वामी को धैर्य दे और यथासाध्य उनके कुशलों को दूर करने की चेष्टा करे । पति के सुन्दर शरीर रूपी घोंसले से प्राणपखेरू उड़ जाने पर पतिव्रता पति के साथ स्वर्ग जाने की तैयारी करे ।

ज़लेखा का गाना बजाना कभी का ख़तम हुआ, पर नरेन्द्र के कानों में वह स्वर्गीय संगीत ध्वनि अब तक उसी तरह गूँज

रही है । नरेन्द्र को वह संगीत कभी तो अत्यन्त प्रिय बोध होता था, कभी वज्रध्वनि से भी अधिक कठोर । वे मन ही मन सोचने लगे:—

ज़लेखा मानवी है या परी ? जो हो, नरेन्द्र बार बार उसके मुँह की ओर देखने लगे । “ज्यों ज्यों निहारत नेरे ह्वै नैननि त्यों त्यों खरी निकरै सी निकाई ।” यह किसी कवि की उक्ति बहुत ठीक है । नरेन्द्र ने पहले ज़लेखा का जैसा सुन्दर स्वरूप देखा था, उससे कहीं बढ़ कर अभी उनको उसका सौन्दर्य देख पड़ा । किन्तु उस विशेष सौन्दर्य के साथ उसके चेहरे पर सोच का चिह्न पीलापन भी झलक रहा था । देह पहले से कुछ खिन्न थी, नयनों में उदासी भरी थी । नरेन्द्र ने अभी उसके चेहरे को भली भाँति देख भी न पाया । इतने में अपूर्व सङ्गीत ध्वनि से फिर पर्वत की कन्दरा गूँज उठी । दुःख का गान सुन कर फिर नरेन्द्र का हृदय द्रवीभूत होने लगा ।

गीत का आशय यह था—

पतिव्रता स्त्री अपने प्राणेश पति से क्या चाहती है ? प्रेम । प्रेमभित्ता के सिवा वह इस संसार में और क्या चाहेगी ? जो प्रेमलता की भाँति तुम्हारे पैरों में लिपट रही है, उसे स्नेह-जल की कणा से जिलाओ, जिसमें मुरझ कर वह धरती पर न लोट जाय । जो अपने घरबार, भाई, बन्धु को छोड़ कर दूर देश से तुम्हारे शरण में आई है, वह जिसमें तुम्हारे सुख में सुख की और दुःख में दुःख की समभागिनी हो, जिसमें वह तुम्हारे पदपङ्कज की छाया में विश्राम पावे, सो करो । वह इसके सिवा अन्य भित्ता नहीं चाहती । जितने दिन प्राण रहेगा, यह दासी तुम्हारी सेवा करके

अपने मान और जन्म को सफल करेगी, जिस दिन तुम इस संसार से कूच करोगे, यह दासी भी तुम्हारे साथ साथ जायगी ।

गाना खतम हुआ । ज़लेखा के नयनों से आँसू वह कर गालों को भिगाने लगा । धीरे धीरे चन्द्रमा का प्रकाश मानो बादल में छिप गया । जिस नये दर्वाज़े से गुफा के भीतर प्रकाश आता था वह बन्द हो गया । वह स्वर्गीय बालिका भी देखते ही देखते गायब हो गई । उस घोर अन्धकार में वीणा का शब्द भी एकाएक रुक गया । नरेन्द्र को दूरस्थ जलप्रवाह की भाँति जो विलक्षण शब्द पहले सुन पड़ता था, वही फिर सुनाई देने लगा, इस शब्द के अतिरिक्त न उन्हें अब कुछ उस अँधेरे में दीख पड़ता है और न कुछ सुन ही पड़ता है । नरेन्द्र स्वप्नावस्था से सुषुप्ति अवस्था में आये । गाढ़ी नींद ने उन्हें बेखबर कर दिया । स्वप्न में उन्होंने और क्या क्या देखा यह सबेरे जब उनकी आँखें खुलीं स्मरण न रहा । वे आँखें मलते हुए उठ खड़े हुए । नशे का अब उनमें चिह्नमात्र भी नहीं रहा । वे हाथ में तलवार लेकर धीरे धीरे गुफा के बाहर आये । बाहर आकर उन्होंने देखा, सूर्य की प्रातः-कालिक कोमल किरणों में पेड़, पौदे, लता और दूबें चमचमा रही हैं । पत्तिगण पेड़ की डालों पर बैठ कर चहचहा रहे हैं । वहाँ से कुछ दूर पर एकलिङ्गेश्वर महादेव का श्वेत-प्रस्तर-निर्मित प्रस्तर-मन्दिर सूर्य की नवप्रभा में बड़ा ही सुन्दर देख पड़ता है । उस मन्दिर की ओर बार बार देखने से भी नयन तृप्त नहीं होते । मन्दिर लोगों से भरा है । मन्दिर के चारों ओर बहुत दूर तक पर्वतों की शोभा हृदय को अलग ही अपनी ओर खींच रही है ।

पच्चीसवाँ परिच्छेद ।

खड्गधारिणी ।



नरेन्द्र के वे तीन दिन कैसे कटे ? चिन्ताजाल में फँस कर वे जाग्रत अवस्था में ही कैसे कैसे भयङ्कर दुःस्वप्न देख रहे थे ? चिन्ताओं के भार से उनका कोमल हृदय किस तरह चकनाचूर हो रहा था ? इसका वर्णन नहीं हो सकता । सैकड़ों चिन्तायेँ सौ विच्छुओं की भाँति एक साथ नरेन्द्र के हृदय पर डङ्क मारने लगीं । सैकड़ों तरह की चिन्ताओं ने नरेन्द्र के हृदय में मानो सैकड़ों छेद कर डाले ।

उस पर्वत की गुफा में शैलेश्वर ने नरेन्द्र को जो कुछ आज्ञा दी थी, वह अब तक उनके हृदय-पट पर अङ्कित है । रमेशचन्द्र के साथ हेमलता का व्याह होने की बात बहुत दिन हुए, नरेन्द्र सुन चुके हैं । हेमलता दूसरे की अर्द्धाङ्गिनी हुई, तब उसका सोच करना, या उस पर प्रेम रखना क्या उचित है ? नरेन्द्रनाथ ! यह क्या वीर-पुरुषों का काम है ? गुसाईँ बाबा का महान् आदेश ग्रहण करो, प्रेम की चिन्ता को हृदय से दूर करो, यश के पथ को परिष्कृत करो, देश का गौरव बढ़ाओ, इससे बढ़ कर वीरों का कर्तव्य और क्या है ? नरेन्द्र ने भली भाँति सोच विचार कर निश्चय किया कि गुसाईँ की आज्ञा शिरोधार्य है ।

नरेन्द्र को फिर हेमलता की बात याद हो आई। उन्होंने गङ्गातट से विदा होने के समय नक्षत्र के ईषत्प्रकाश में जो मुरझाया हुआ मुख-कमल देखा था, वह उनके आँखों के सामने आकर नाचने लगा। नरेन्द्र का सारा शरीर कण्टकित हो उठा। हेमलता ने उनके साथ बाल्यकाल में जो सब खेल खेले थे, वे एक एक कर उनको याद आने लगे। जिस दिन नरेन्द्र घरबार त्याग कर विरक्त हो चले थे, उस दिन हेम अपने प्राण को उनके साथ कर देना चाहती थी। बाल्यावस्था में हेम नरेन्द्र को ही अपने हृदय का सर्वस्व समझती थी। वह छाया की तरह नरेन्द्र के साथ फिरा करती थी। यौवन के प्रारम्भ में हेमलता सुबह शाम जब तक एक बार नरेन्द्र को नहीं देखती थी, तब तक उसे चैन नहीं पड़ता था। नरेन्द्र को देखते ही उसके हृदय का उद्वेग शान्त होता था। इस तरह की हज़ारों बातें नरेन्द्र के हृदय को मथित करने लगीं। नरेन्द्र से अब न रहा गया। वे मन्दिर के एक तरफ़ एकान्त में बैठ कर चुपचाप रोने लगे। उनकी आँखों से आँसू की धारा बह चली।

फिर नाना प्रकार की चिन्तायें उनके चित्त में उदित होने लगीं; नरेन्द्र का न घर है, न बन्धु-बान्धव है, न परिवार है। वह अकेले देश देश घूम रहा है। केवल हेमलता की चिन्ता ही उसके जीवन का एकमात्र आधार है। इस संसार-समुद्र में हेमलता ही उसके प्राण का एकमात्र अवलम्ब स्वरूप है। हेमलता की चिन्ता के सिवा नरेन्द्र के पास और क्या बच रहा है? निर्दय, शिवभक्त शैलेश्वर ! तुम इस अभागे की एकमात्र सुखचिन्ता, एकमात्र सुख-स्वप्न का हरण न करो। हेमलता की चिन्ता को मेरे चित्त से

हटाने की चेष्टा न करो । ऐसी आज्ञा न दो, जिससे मैं अपनी बाल-प्रणयिनी को सदा के लिए भूल जाऊँ । नरेन्द्र ने बड़े बड़े क्लेश सहें हैं, और भी जो दुःसह क्लेश सहने की आज्ञा दोगे, सहने के लिए नरेन्द्र तैयार है । नरेन्द्र रणभूमि में शस्त्र परित्याग कर शत्रु के पैरों पर गिर सकता है । वीरता को तिलाञ्जलि दे सकता है । अन्न-जल के कष्टों को सह सकता है । निन्दा का भार अपने ऊपर ले सकता है । बस्ती छोड़ कर घोर जङ्गल में सिंह और बाघ आदि हिंसक जन्तुओं के साथ रह कर जीवन बिता सकता है । शैलेश्वर ! इन सबों से यदि मेरे पाप का प्रायश्चित्त हो तो आप आज्ञा दीजिए, नरेन्द्र आपकी आज्ञा को सिर चढ़ावेगा । इसमें यदि क्षण भर के लिए भी यह आनाकानी करे तो करालवदना काली के सामने इसका शिरच्छेद करो । किन्तु बाल्यकाल से जिस चिन्ता का अवलम्बन करके नरेन्द्र अब तक जीवित है, जिस चिन्ता के प्रकाश में नरेन्द्र इस अन्धकारमय जीवन को लिये हुए देश देश घूम रहा है, उस चिन्ता को दूर करने की आज्ञा न दो । मैं जानता हूँ कि हेम अब दूसरे की गृहिणी हुई, तथापि उसके प्रेम की भावना नरेन्द्र के हृदय से दूर नहीं होती । भला यह कब हो सकता है कि नरेन्द्र हेम को भूल कर यवनकन्या के साथ व्याह करके यवन होगा ? हेम यह सुनेगी । सुन कर वह मुझ पर घृणा करेगी । यह मुझे क्योंकर सह्य होगा ? वञ्चक पुजारी ! हिन्दू-कुल-पूज्य गुसाईं होकर तुम मुसल्मानी से व्याह करने का उपदेश देते हो ? विधर्मी, कपटाचारी, दूर हो । फिर कभी मेरे सामने ऐसा प्रस्ताव न करो ।”

नरेन्द्र को फिर शैलेश्वर का गौरवपूर्ण आदेश स्मरण हो आया । शैलेश्वर का यह कथन ज्यों का त्यों उनको याद हुआ—
 “हा नरेन्द्र, अपने को न भुलाओ, न मुझी को भुलावा देने की चेष्टा करो, जिस घोर पाप में लिप्त हुए हो, उसको भली भाँति मन में सोचो ।” गुसाईं ने क्या झूठ कहा है ? परखी की चिन्ता क्या पाप नहीं है ? नरेन्द्र, सावधान ! तुम पाप में लिप्त हो रहे हो । गुसाईं तुम्हारा दोष दिखला रहा है । उसकी निन्दा मत करो । नरेन्द्रनाथ, इस प्रकार बार बार सोच कर भी क्या करना चाहिए, कुछ स्थिर न कर सके ।

तीसरे दिन साँझ को नियत समय से एक घण्टा पहले ही नरेन्द्रनाथ गुफा के द्वार पर जा खड़े हुए । कुछ देर खड़े होकर वे चुपचाप इधर उधर टहलने लगे । बीच बीच में खड़े होकर कभी स्थिर दृष्टि से आकाश की ओर देखते हैं और कभी घूम फिर कर फिर उसी गुफा के द्वार पर आ कर खड़े होते हैं । हाथ में नङ्गी तलवार है, चेहरे पर गम्भीरता छाई है ।

कुछ ही देर में शैलेश्वर वहाँ आ उपस्थित हुए । नरेन्द्रनाथ गोस्वामीजी को प्रणाम करना भूल गये । पर गुसाईं जी आशीर्वाद देना नहीं भूले । गुसाईं ने आशीर्वाद देकर पूछा—“तुम दृढ़प्रतिज्ञ हुए ?”

नरेन्द्र ने किञ्चित् गम्भीर और कर्कश स्वर से कहा—
 “हाँ, हुए ।”

दोनों गुफा के भीतर गये ।

गुफा में भीतर पूर्व दिन की भाँति उजेला हो रहा था, निर्धूम

आग के प्रकाश में शैलेश्वर ने जो कुछ देखा, उससे उनको चकित होना पड़ा ।

नरेन्द्रनाथ के ललाट, कपोल, कन्धा, बांह और छाती आदि सर्वाङ्ग रक्त चन्दन से पोते हुए हैं ।

शैलेश्वर—“पापिष्ठ ! तुम परछी के प्रेमोपभोग की इच्छा नहीं तज सके ?”

नरेन्द्र—“मेरे मन में प्रेमोपभोग की इच्छा नहीं है ।”

शैलेश्वर—“क्या हेमलता की चिन्ता तुम्हारे मन से दूर हुई ? क्या तुम उसे अब इस ज़िन्दगी में देखना नहीं चाहते ?”

नरेन्द्र—“मैं यह स्वीकार करने को प्रस्तुत हूँ ।”

शैलेश्वर—“अच्छा, यह बताओ, यवनकन्या से व्याह करने को राजी हो ?”

नरेन्द्र—“नहीं, यह इस ज़िन्दगी में मुझसे नहीं होगा ।”

शैलेश्वर कुछ देर चुप रहे, फिर बोले—“तो प्रतिज्ञापालन के लिए तैयार हो, तलवार रख दो, काली के सम्मुख जीवन दान के हेतु तैयार हो ।”

नरेन्द्र—“मैंने जो प्रतिज्ञा की थी, उसका पालन किया, आप से भेट करने का वादा किया था ।”

शैलेश्वर—“सिंह की गुफा में आकर भी जीने की आशा बनी है ? यहाँ कौन तुम्हारी सहायता करेगा ?”

नरेन्द्र—“यह खड्ग ।”

शैलेश्वर—“चुपचाप गुफा के किसी गुप्त स्थान से एक तलवार ले आये । उदयपुर में एक दफ़े जैसा युद्ध हुआ था आज

फिर दोनों में वैसा ही युद्ध हुआ । नरेन्द्र उस दिन की अपेक्षा आज बड़ी सावधानी और बड़े यत्न से लड़ने लगे । किन्तु नरेन्द्र का सब यत्न वृथा हुआ । सिंह के समान पराक्रमी गुसाईं ने थोड़ी ही देर में नरेन्द्र को परास्त करके उनकी तलवार छीन ली ।”

शैलेश्वर—“केवल गुसाईं गिरी ही में ये बाल सफेद नहीं हुए हैं । राजस्थान की भूमि वीरप्रसविनी है । युद्ध के समय गुसाईं लोग भी वीरता दिखलाने में नहीं चूकते । तुम बालक हो, तुम्हारे साथ मैंने युद्ध किया, यही मेरे लिए भारी कलङ्क हुआ ।”

नरेन्द्र—“मैं जीवनदान के लिए भी प्रस्तुत हूँ; तुम्हारी जो इच्छा हो, करो ।”

शैलेश्वर ने एक रस्सी निकाली । उस रस्सी से नरेन्द्र के दोनों हाथ खूब जोर से कस कर बांधे । इतने कस कर बांधे कि नरेन्द्र के हाथ की नसें सिकुड़ गईं तो भी वे कुछ न बोले । पीछे शैलेश्वर ने नरेन्द्र के मुँह के पास मद्य का बर्तन रख कर पीने कहा, नरेन्द्र ने वह भी किया । तदनन्तर गोस्वामी गुफा से बाहर हुए ।

मद्य पीने के साथ नरेन्द्र की आँखें घूमने लगीं, कुछ देर में बेहोश होकर वे धरती पर गिर पड़े । उनकी आँखों के सामने अँधेरा सा छा गया । उनको मालूम होने लगा, जैसे गुफा के पास दो आदमी आपस में धीरे धीरे कुछ बातें कर रहे हैं । सुनते ही सुनते नरेन्द्र मदिरा के प्रभाव से सो गये । पीछे क्या हुआ, उन्हें कुछ मालूम नहीं ।

नरेन्द्र सो गये, पर नींद अच्छी न आई । वे सारी रात स्वप्न

ही देखते रहे । कभी स्वप्न देखते थे, कभी अर्द्धनिद्रित की भाँति अधखुली आँखों से ताक कर करवटे बदलते थे, कभी कुछ देर के लिए जागते थे, पर बेहोशी के मारे कुछ निश्चय नहीं कर सकते थे कि वे किस हालत में हैं ।

बहुत देर पीछे उनको मालूम हुआ जैसे एक दिन पहले गुफा के भीतर निविड़ अन्धकार में एकाएक प्रकाश की छठा देख पड़ी थी वैसे आज भी देख पड़ा । आज भी उसी तरह गुफा के अपूर्व द्वार से एक पोडशी का प्रवेश हुआ । उस चाँदनी से विमल प्रकाश में वह चन्द्रमुखी शोभायमान होने लगी । किन्तु आज वह न कुछ गाती है न कुछ बजाती है, न उसके हाथ में वीणा है । किन्तु उसके हाथ में एक तलवार ज़रूर है, आज वह गुफा में खड्गधारिणी होकर आई है ।

आज वह साक्षान् चण्डी सी दीख पड़ती है, उसकी ऐसी भयङ्कर मूर्ति देख कर कौन कह सकता है कि यह वही मत्तो-हारिणी ज़लेखा है ! क्रोध से उसका समस्त मुखमण्डल लाल हो गया है । उसकी आँखों से आग की चिनगारियाँ निकल रही हैं । अबर को वह दाँतों से दबाये हुई है । चोली के अन्दर एक तीक्ष्ण कटार छिपाये हुए है । उसके हाथ में गुसाईं वाली वही कराल तलवार है । नरेन्द्र उसे देख कर विस्मित हुए । उनके कपार से प्रसीन्ना वह अला । उन्होंने उठने की चेष्टा की किन्तु स्वप्न में विपदा-पन्न व्यक्ति की तरह वे न उठ सके और न वहाँ से भाग ही सके ।

वह आत्मलीनता करकमल में लम्बी तलवार लिये गुफा के भीतर प्रवेश कर एक बार ठिठक कर खड़ी हुई; एक बार नरेन्द्र

के मुँह की ओर देखा । उसके हाथ से तलवार छुट कर गिर पड़ी ।

इस दफे उसने फिर आँचल के भीतर से एक तेज़ कटार निकाली, और बड़ी धीरता से उस कटार को नरेन्द्र की छाती पर रखा । न मालूम क्या सोच कर उसने वह कटार फिर नरेन्द्र की छाती पर से उठा ली और वह मन ही मन कुछ सोचने लगी । कटार उसके हाथ से छुट कर नीचे गिर गई । वह बालिका धीरे धीरे वहाँ से चली गई ।

नरेन्द्र डर से चीत्कार कर उठ बैठे, उनकी नोंद जाती रही । उन्होंने देखा, उनका सारा वदन पसीने से तरबतर हो रहा है । नशा अब नाम मात्र को भी नहीं रह गया है । गुफा में सन्नाटा छाया है । अँधेरे में कहीं कुछ दिखाई नहीं देता । वे धीरे धीरे गुफा से बाहर निकल आये । देखा, रात बीत चली, पूरव ओर आकाश में लालिमा छाई है । दो एक तारे अब भी बुझते हुए दिये की भाँति टिमटिमा रहे हैं । प्रातःकाल की ठंडी हवा मन्द मन्द बह रही है । खिले हुए फूलों की सुगन्ध से दसों दिशायेँ आमोदित हो रही हैं । पक्षिगण मधुर गान से उपवन की निस्तब्धता भङ्ग कर रहे हैं ।

छब्बीसवाँ परिच्छेद ।

श्यामनगर की लड़ाई ।


 पूर्वोक्त घटना के कुछ दिन बाद जोधपुर के महाराज यशवन्तसिंह ने फिर चतुरङ्गिणी सेना के साथ सजधज कर औरङ्गजेब के साथ युद्ध करने की अभिलाषा से आगरे की तरफ कूच किया । नरेन्द्र ने भी उस सेना के साथ राजस्थान त्याग किया । नरेन्द्र जो कई एक महीने तक उदयपुर में रह गये थे, उस बीच में आगरे में एक राजविप्लव संघटित हुआ था । आगरे में न अब वे बादशाह हैं, न अब वह बादशाही सलतनत है । इसलिए उस विप्लव की कुछ बात संक्षेप से यहाँ कह देना आवश्यक है । जो पाठक इतिहास-वेत्ता हैं और उस विप्लव की बात जानते हैं, वे इस परिच्छेद को न भी पढ़ें तो कोई हर्ज नहीं ।

इस भयङ्कर भ्रातृ-विरोध के आरम्भ होने पर पहले काशी के युद्ध में सुलतान शुजा और उसके बाद उज्जयिनी की लड़ाई में राजा यशवन्तसिंह परास्त हुए थे । यह पहले कहा जा चुका है । शेष घटना की बात सुन कर, अर्थात् यशवन्तसिंह के पराजय का वृत्तान्त सुन कर, बादशाह शाहजहाँ के ज्येष्ठ पुत्र दारा अत्यन्त क्रुद्ध होकर एक लाख से कुछ अधिक सेना साथ ले स्वयं युद्ध करने

चले और चम्बल नदी के किनारे शिविर स्थापित कर मुराद तथा औरङ्गजेब के आने की प्रतीक्षा करने लगे ।

निदान कुछ एक दिन में वे लोग भी इस नदी के दूसरे किनारे आ उपस्थित हुए । मुराद जैसे साहसी थे, वैसे ही युद्ध-विद्या में चतुर थे । उन्होंने नदी पार होकर युद्ध करने की सलाह दी । किन्तु कपटयुद्ध में प्रवीण औरङ्गजेब ने ऐसा न करके दारा को धोखा देने की इच्छा से शिविर वहीं छोड़ कर चुपचाप सेना सहित अपने नदी के किसी औघट से पार हो आगरे से सात आठ कोस दूर यमुना नदी के किनारे श्यामनगर नामक गाँव में डेरा डाला । “दुश्मनों ने चम्बल नदी पार होकर आगरे के समीप यमुना नदी के तट पर छावनी डाली है ।” यह सुन कर दारा एकदम अचम्भे में आ गये, उन्होंने उसी घड़ी अपनी सेना ले उस गाँव के पास यमुना किनारे अपनी छावनी डाली ।

श्यामनगर के युद्ध का फल था—भारतवर्ष का राजसिंहासन जो विजयी होगा वह बादशाही ताज से अपने मस्तक को अलङ्कृत करेगा । दोनों दलों में किसी का साहस अग्रसर होने का नहीं होता था, दोनों दल अपनी अपनी जगह यथास्थित पड़े थे । चार दिन तक दोनों दल परस्पर आक्रमण की प्रतीक्षा करते रहे । पाँचवें दिन लड़ाई शुरू हुई । उस युद्ध की विशेष वर्णना की यहाँ कोई आवश्यकता नहीं । दारा के बाईं और राजपूत राजा रामसिंह और चतुरशाल बड़ी वीरता के साथ युद्ध करके हत हुए, दारा के दक्षिण पार्श्व में करीमउल्ला नामक मुसलमान सेनापति था जो औरङ्गजेब से मिला था, अतएव उसने दारा के साथ विश्वास

घातकता कर युद्ध से एकदम मुँह फेर लिया। आखिर औरङ्गजेब की जीत हुई।

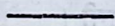
कपटपटु औरङ्गजेब ने युद्धक्षेत्र में करीमउल्ला का पूरा सम्मान किया और मुराद को भारतवर्ष का सम्राट् कह कर उसके हृदय को गद्गद् किया।

कुछ ही दिनों में औरङ्गजेब ने छल, बल, और कौशल से आगरा हस्तगत करके पिता (शाहजहाँ) को कैद कर लिया। शाहजहाँ की छोटी लड़की, जिसका नाम रौशनआरा था, वह औरङ्गजेब को गुप्त से गुप्त खबरें पहुँचा कर उसकी पूरी सहायता करती थी। जब से औरङ्गजेब की जीत हुई तब से रौशनआरा के प्रभुत्व और चमत्ता की सीमा न रही। शाहजहाँ की बड़ी लड़की जहानआरा रूप, गुण और कला-कौशल में अपनी छोटी बहन से बड़ी थी। उस लावण्यमयी शाहज़ादी को पाठकगण एक दिन बेगम-महल में देख चुके हैं। औरङ्गजेब की जीत से जहानआरा का सारा गुण-गौरव जाता रहा। वह बेचारी पिता की सेवा में रह कर जीवन का शेष भाग बिताने लगी।

आगरा हस्तगत करके औरङ्गजेब दिल्ली को रवाना हुए। जब वे मथुरा पहुँचे तब उन्होंने मुराद को बुला भेजा। मुराद वहाँ पहुँच कर आमोद-प्रमोद में मग्न हुए। मद्यपान और रण्डियों के गाने बजाने के पीछे वे पागल बन बैठे। वे वारांगनायें चारों ओर से मुराद को घेर कर बैठीं। मुराद उन्मत्त की भाँति लज्जा को तिलाञ्जलि दे एक नवयौवना सुन्दरी को अपने सीने से लिपटा कर बेहोश हो गये। औरङ्गजेब तो इस अवसर को दूँढ़ ही रहा था,

भट्ट मुराद को कैद कर कारागार में भेज उसने अपना अभीष्ट सिद्ध किया ।

इसके अनन्तर क्या हुआ ? यही कि औरङ्गजेब ने राजच्छत्र धारण कर सम्राट् का आसन ग्रहण किया । दारा सिन्धु नदी की ओर भागा । सुलतान शुजा वङ्गदेश से फिर सेना साथ ले युद्ध करने आया । जोधपुर के राजा यशवन्तसिंह के जी से पराजय की ग्लानि अब भी दूर नहीं हुई थी । वे भी सेना साथ ले औरङ्गजेब पर चढ़ आये हैं ।



सत्ताइसवाँ परिच्छेद । दर्पण में अपूर्व प्रतिबिम्ब ।



ई एक दिनों के सफ़र के बाद यशवन्तसिंह की सेना आगरा शहर में आ पहुँची । औरङ्गजेब का प्रभाव इतना बढ़ा था कि उसके साथ सामना सामनी युद्ध करना यशवन्तसिंह के साहस से बाहर की बात थी । इसलिए वे सुयोग की अपेक्षा करने लगे । औरङ्गजेब के परम शत्रु ने मित्र का स्वरूप धारण कर आगरा शहर के भीतर प्रवेश किया ।

यमुना नदी की अपार शोभा और आगरा का अपूर्व सौन्दर्य देख कर कौन ऐसा है जो मोहित न होगा ? संगमर्मर का बना हुआ अपूर्व कारु-कौशल का नमूना अनुपम ताजमहल सन्ध्याकाल नीलाकाश में एक अलौकिक शोभागृह की भाँति शोभायमान हो रहा है । उसके चारों ओर क्या ही सुन्दर सड़कें, उपवाटिकायें, और फव्वारे हैं । पास ही श्यामा तरलतरङ्गिणी यमुना नदी है । आगरे का क़िला भी देखने ही योग्य है । उसके भीतर संगमर्मर की बनी हुई अत्यन्त सुन्दर मोती-मसजिद, दीवानेखास, दीवाने-आम, रङ्गमहल और सीसमहल आदि अनेक ऐसे रमणीय सुन्दर भवन हैं, जिनके सौन्दर्य का वर्णन करना कठिन है । आगरे की शोभा कहाँ तक बरनी जा सकती है ? जिन्होंने आगरा शहर नहीं देखा है उन्हें एक बार उसे ज़रूर देख लेना चाहिए ।

आज प्रसिद्ध मयूर सिंहासन पर बादशाह औरङ्गजेब बैठे हैं, प्रासाद के सुविशाल सफ़ेद खम्भे अपूर्व शोभा दे रहे हैं। गुलाबी रङ्ग के चँदवे के कोर में चारों ओर मोतियों की झालरें लटक रही हैं। उन झालरों के साथ भाँति भाँति के फूलों की माला अपनी एक न्यारी ही शोभा दिखला रही है। सिंहासन के चारों ओर राजा, महाराजा, अमीर, उमरा और मनसबदार आदि भारत के प्रसिद्ध प्रसिद्ध वीर, धीर, मानी, धनी लोग अदब से खड़े होकर सम्राट्-सभा की शोभा बढ़ा रहे हैं।

उस प्रासाद के सामने एक बहुत बड़ा खेमा खड़ा है। उसके चारों ओर चाँदी के खम्भों के साथ कनाते घिरी हैं। खेमे के ऊपर का कपड़ा सफ़ेद है। भीतर मसलीपट्टन की छींट है। उस छींट में ऐसे सुन्दर फूल-पत्ते और लतायेँ चित्रित हैं जो बाहर से देखने वालों को यही बोध होता है कि खेमे के भीतर यथार्थ ही फूल खिले हैं। नीचे मखमली गुलीचा बिछा है, उस पर फूलों की पंखड़ियाँ इस प्रकार सजी हैं कि शिविरस्थ व्यक्ति के चलने में तकलीफ़ न हो, पर तो भी वह व्यक्ति फूलों से कहीं पैर न छिल जाय इस भय से पुष्पास्तरण पर टहलने में हिचकता है।

उसके बाहर क़िले तक विजय-पताका और तोरण-वन्दनवार आदि माङ्गलिक वस्तुएँ अनेक प्रकार से सुसज्जित हैं। सेनागण श्रेणीबद्ध होकर विजयवाद्य से सब के मन को उत्तेजित कर रहे हैं। प्रातःकालिक सूर्य की किरणों में सेनागण की बन्दूकें और तलवारें चमचमा रही हैं। क़िले की दीवार पर अँगरेज़ फरासीसी और गोलन्दाज़ सैनिकगण दनादन तोप छोड़ रहे हैं। वे लोग

बहुत दूर से रत्नगर्भा भारतभूमि में रत्न बटोरने के लिए आये हैं और बादशाह से वेतन पाकर आज तोप की आवाज़ से बादशाह के विजय की घोषणा कर रहे हैं। क़िले के बाहर, शहर के भीतर सड़कों पर, घर, दर्वाज़े, यमुना के किनारे जहाँ देखिए वहीं झुंड के झुंड लोग पोशाक पहने दिखाई देते हैं। तमाम आगरा शहर लोगों से खचाखच भरा है।

पुरानी रीति के अनुसार औरङ्गज़ेब सोने की तुला पर चढ़े। इस पीछे प्रधान प्रधान अमीर उमरा सोने के बराबर तौले गये। पीछे सभी ने वित्तानुसार सोने के सिक्के और जवाहरात नज़राना दाखिल करके बादशाह के चित्त को प्रसन्न किया।

इसके अनन्तर विश्वविमोहिनी वेश्याओं ने यौवनमद से उन्मत्त होकर अपूर्व गान और नाच से सभासदों के हृदय को विमोहित किया। नर्तकी बड़े बड़े अमीरों के यहाँ शादी वगैरा उत्सवों में नाचने गाने के लिए अकसर बुलाई जाती थीं। शाहजहाँ उन रण्डियों को अपने पास रखते थे और बहुत कुछ उनकी खातिर करते थे। कभी कभी उन्हें अपने साथ बेगमों के महल में भी सजाते थे। किन्तु नीरस हृदय, औरङ्गज़ेब उन सबों को अपने पाले फटकने नहीं देता था। इसलिए आज जलसे के दिन वे नर्तकी बड़ी खुशी से गा बजा कर अमीरों को रिझा रही हैं।

वेश्याओं के गाने बजाने के अनन्तर क़िले के पूरब ओर अर्थात् यमुना के किनारे सरकस और दंगल होने लगे। बेगमों जिसमें अपने अपने कोठे पर से तमाशा देख सके, इसलिए दंगल के लिए वही जगह चुनी गई। पहलवानों की कुश्ती

आदि होने के बाद दो मतवाले हाथियों की लड़ाई शुरू हुई। बीच में अन्दाज़न दो हाथ ऊँची एक मिट्टी की दीवार थी। उसके दोनों तरफ से दो मत्त हाथी महावत के द्वारा प्रेरित होकर लड़ने लगे। यमुना के दोनों किनारों से तमाशवीन लोग आश्चर्य के साथ यह भयङ्कर युद्ध देखने लगे। दोनों हाथियों में बड़ी देर तक लड़ाई होती रही। सूँड़ और दाँतों के आघात से दोनों हाथियों का मस्तक और शरीर क्षत-विक्षत हुआ। एक एक हाथी पर दो दो महावत थे। एक हाथी का एक महावत नीचे गिर गया। गिरने के साथ उसने हाथी के द्वारा पददलित होकर जीवन त्याग किया। दूसरे हाथी पर के एक महावत का हाथ इस तरह टूटा कि फिर जुड़ने का नहीं। इन्होंने हतभागे महालोभी महावतों ने जीवन की आशा त्याग करके दोनों हाथियों को युद्ध में प्रवृत्त किया था। धन के लोभ से अपने पुत्र कलत्र से जन्म भर के लिए बिदाई लेकर आये थे। बहुत देर तक युद्ध होने के पीछे एक हाथी दूसरे को परास्त करके मिट्टी की दीवार लाँघ कर उस पराजित हाथी के पीछे दौड़ा। वह भाग चला। विजयी मत्त-मातंग उसका पीछा किये जा रहा है, यह देख कर लोग उसको रोकने के लिए भाँति भाँति की तरकीबें करने लगे। जहाँ तहाँ आतशबाज़ी आदि छुटने लगों; किन्तु वह ऐसा क्रोधान्ध हो रहा था कि इस भयानक अग्नि-लीला पर कुछ लक्ष्य न देकर बराबर उसके पीछे पीछे जाता ही रहा। आखिर वह पराजित हाथी तैर कर यमुना पार हो गया। रास्ते में सामने जो दो एक लोग पड़े वे उस आक्रमणकारी हाथी के पाँव तले कुचल गये।

नरेन्द्रनाथ ये सब अद्भुत कौतुक देखते हुए यमुना किनारे गये । वहाँ भली भाँति मुँह हाथ धोकर एक वृत्त के नीचे सो रहे । जहाँ नरेन्द्र सोये थे, वह जगह बड़ी रमणीय थी । सुविशाल तमाल वृत्त के ऊपर दो एक पत्ती मानो दिन के प्रचण्ड आतप से सन्तप्त होकर धीमे स्वर से बोल रहे हैं । उस पेड़ के पास ही एक तरफ पुरानी क़ब्र है, जो बेमरम्मत होने के कारण टूटी फूटी सी अवस्था में पड़ी है, उसके पत्थर कहीं कहीं फट गये हैं, और उस क़ब्र पर पीपल के पेड़ और छोटे छोटे पौदे तथा लतायेँ जम गई हैं । क़ब्र के एक पार्श्व में फ़ारसी अक्षर में कुछ लिखा था । उसका भावार्थ यही कि—“मित्र मेरा नाम जानने की क्या आवश्यकता है ? मैं संसार में निपट अभागिनी और चिरदुःखिनी थी, यदि तुम भी हतभाग्य हो, तो मेरे लिए दो बूँद आँसू यहाँ बैठ कर बहा देना ।” यमुनातट की मन्द मन्द शीतल हवा उस शीतल स्थान को और भी सुशीतल कर रही है । कल कल शब्द से यमुना का प्रवाह अविरत बह रहा है । नरेन्द्रनाथ अति शीघ्र नींद में सो गये ।

वे कितनी देर सोये, इसका वे निश्चय न कर सके । निद्रित अवस्था में उन्होंने एक विचित्र स्वप्न देखा । उन्हें जान पड़ा जैसे उस क़ब्र से मरा हुआ आदमी जीकर बाहर निकल आया है । वह एक यवनी है । मृत्यु के पीछे की सफ़ेदी उस स्त्री के मुँह पर अब भी झलक रही है । उसकी दोनों आँखें भीतर को घँसी हुई हैं, देह अत्यन्त दुर्बल है, उसकी आकृति से दुःख का भाव झलक रहा है । क़ब्र में जो कुछ लिखा था, वह औरत मानो करुणा भरे स्वर में उसे गाने लगी, उसका वह दुःख से भरा हुआ गान सुन कर

नरेन्द्र निद्रित अवस्था में भी अपने आँसुओं को न रोक सके। उनकी मुँदी हुई आँखों से आँसू की धारा वह चली। उस यवनी ने मानो फिर एक दूसरा गीत शुरू किया। नरेन्द्र को वह स्वर अब कुछ कुछ परिचित सा बोध होने लगा। थोड़ी देर में उनको निश्चय हो गया कि वह स्वर उसी अभागिनी ज़लेखा के कण्ठ का है। नरेन्द्र ! अच्छी तरह गौर करके देखो, स्वयम् ज़लेखा कब्र के ऊपर बैठ कर दुःख का गान गा रही है।

नरेन्द्र का स्वप्न समाप्त हुआ। एकाएक उनकी आँखें खुल गईं। उन्होंने चारों ओर ध्यान से देखा, पर कहीं कोई देख न पड़ा। सूर्यास्त हो चुका है। लाल रंग की साड़ी पहन कर सन्ध्या शोभायमान हो रही है, उसके ललाट पर एक उज्ज्वल तारा हीरे की तरह अपनी अपूर्व चमक दमक दिखा रही है। सायंकाल की ठंडी हवा मन्द मन्द वह रही है। जमुना का नील जल और भी अधिकतर नीलवर्ण धारण करके प्रवाहित हो रहा है।

नरेन्द्र आश्चर्य के समुद्र में गोता खाने लगे। वे इसके पूर्व भी तीन चार बार स्वप्न में ज़लेखा का गान सुन चुके हैं। तो क्या ज़लेखा के ऊपर नरेन्द्र का अनुराग उत्पन्न हुआ है ? नरेन्द्र ने भली भाँति अपने हृदय का अनुसन्धान किया। हृदय हेमलता के अनुराग से भरा था। हो सकता है, ज़लेखा का ही अनुराग नरेन्द्र के ऊपर हो। ज़लेखा मानवी है या परी ? यदि परी है तो वह मनुष्य के प्रेम की अभिलाषिणी क्यों है ? नरेन्द्र इन सब बातों को मन ही मन सोचते हुए कब्र की ओर चले। कुछ दूर आगे आकर उन्होंने जो कुछ देखा उससे उनके आश्चर्य

की सीमा न रही । एकाएक क़त्र के पास न मालूम किधर से ज़लेखा आकर खड़ी हुई । उसका खिन्न शरीर और मलिन चेहरा देख कर यही बोध होता था जैसे सचमुच ही क़त्र से मुर्दे की ठठरी फिर जीकर बाहर निकल आई हो । वदन विलकुल पीला पड़ गया है सही, किन्तु उसकी आंखों से पूर्ववत् तीव्र ज्योति निकल रही है । वह तेजोमय वामा दाँतों से होंठ काटती हुई तिरछी नज़र से नरेन्द्र की ओर देख रही है । उसकी छाती पर एक तेज़ कटार की नोक दिखाई दे रही है । क्या यही अबला दुःख का गान गाती थी ?

ज़लेखा नरेन्द्र को आने का इशारा करके आप आगे आगे चली । उसने बहुत दूर चल कर क़िले के भीतर प्रवेश करके राजभवन के एक अँधेरे घर में प्रवेश किया । नरेन्द्र इतनी दूर किंकरव्याकिन्तु होकर उसके पीछे पीछे जा रहे थे । किन्तु अब उसको आगे बढ़ने की हिम्मत न पड़ी । वे अँधेरे घर के भीतर एक रखवा के साथ जाने में संकोच करके बोले — “मैं नहीं जानता कि तुम कौन हो । मैं बिना किसी की आज्ञा के राजभवन के भीतर प्रवेश करना नहीं चाहता ।”

ज़लेखा — “यदि राजप्रासाद के भीतर जाने का सेश अधिकार न रहता तो तुमको मैं अपने साथ क्यों आने को कहती ?”

नरेन्द्र — “तुमको अंदर ही भीतर जाने का अधिकार हो, इससे तुम्हें क्या ? मैं तुमको नहीं जानता, मैं अप्रसिद्धि स्थान से तुम्हारे साथ इस प्रकार आया कर न जाऊँगा ।”

ज़लेखा स्वर की कुछ कड़ा कर बोली — “तुम सब को

आशङ्का कर रहे हो ? यदि मेरी इच्छा तुमको मार डालने ही की रहती तो मैं तातार देश की रहने वालो हूँ । मैं अभी तक इस कटार का प्रयोग तुम्हारे ऊपर कभी कर देती, किन्तु नहीं, मैं ऐसा काम हर्गिज नहीं कर सकती । यह लो, कटार को अभी दूर फेंक देती हूँ । निरख स्त्री के साथ जाने में कदाचित् वीर पुरुष को कोई आपत्ति न होगी ।”

ज़लेखा की विकट हास्यध्वनि सुन कर नरेन्द्र का मुखमण्डल सारे क्रोध के लाल हो गया । वे चुपचाप ज़लेखा के पीछे पीछे जाने लगे । कुछ दूर आगे जाकर ज़लेखा ने एक जगह जो ढेर सा कपड़ा रक्खा था, दिखला कर नरेन्द्र से पहरने को कहा । नरेन्द्र ने उन कपड़ों को हाथ से उठाकर देखा । वे तातार देशीय स्त्रियों के पहनाव के थे । उन्होंने ज़लेखा के ऊपर आश्चर्य भरी दृष्टि डाली । ज़लेखा ने इस बार गम्भीरतापूर्वक कहा — “देर मत करो, हम लोग जिस दरवाज़े से आये हैं वह अब बन्द हो गया । चारों ओर खोजा-गण हाथ में खुली तलवार लिये पहरा दे रहे हैं । ये महल बेगमों के हैं, इनमें बादशाह के अतिरिक्त अन्य पुरुषों के आने की सख्त मनाई है । यदि कोई तुम्हें पहचान लेगा कि तुम मर्द हो तो उसी घड़ी तुम्हारी जान जायगी ।”

नरेन्द्र ने आश्चर्यभरी दृष्टि से चारों ओर देखा, ज़लेखा की बात उन्हें सत्य जान पड़ी, उन्होंने मजबूर होकर चोली और घाँघरा पहना । ज़लेखा ने हँसते हँसते उनके सिर पर बनावटी वाल सँवार कर चोटी गूँथ दी । नरेन्द्र इस विचित्र वेष से ज़लेखा के साथ अन्तःपुर में धुसे ।

नरेन्द्र ज़लेखा के पीछे पीछे चले, उन्होंने कितने घर दर्वाज़े और पथ का अतिक्रम किया इसकी गिनती नहीं हो सकती। प्रत्येक द्वार पर हाथ में तलवार लिये स्त्री-सेना पहरा दे रही थी, और सैकड़ों दासियाँ इधर उधर जा आरही थीं। ज़लेखा को देखकर पहरेवालों ने रास्ता छोड़ दिया।

नरेन्द्रनाथ वेगमों के महल के ज्यों ज्यों भीतर जाने लगे, त्यों त्यों वे अधिक विस्मित होने लगे। वे उत्तरोत्तर सजावट की चीज़ें, शिल्पकारी और भोग-विलास की सामग्रियों को देखकर चकित हुए। संगमर्मर के बने हुए भाँति भाँति के रमणीय भवनों की शोभा नरेन्द्र के चित्त को चुराने लगी। शाही इमारत देखकर वे दंग हो रहे। संगमर्मर की दीवार, छत और खम्भों में हरे, नीले, पीले और लाल रङ्ग के बेशकीमती पत्थरों के टुकड़े जड़ कर ऐसे ऐसे सुन्दर बेल, बूटे, पेड़, पत्ते, फल, फूल आदि बनाये गये हैं, जो असली चीज़ों को मात कर रहे हैं। कहीं सोने के पत्तर से मढ़े हुए खम्भों पर भाँति भाँति के नगीने जड़े हैं और उस पर ऐसी बारीक कारीगरी का काम किया हुआ है जो देखते ही बन आवे, वर्णन कर कोई कहाँ तक पार पावे। भाँति भाँति के बहुमूल्य पत्थरों के बने हुए भिंभरीदार झरोखे, सुन्दर फव्वारे और पुष्पोद्यान की शोभा चित्त को अपनी ओर खींच रही है। वेगमों की बैठक और शयनागार की सजावट का वर्णन नहीं हो सकता। सजावट की चीज़ों में आप जिस वस्तु को सर्वोत्कृष्ट मानें वही वहाँ मौजूद समझिए। भाँति भाँति के रङ्गोने काँच की हाँडी, ग्लास और भाड़ से तरह तरह की रौशनी निकल कर भीतर और बाहर फैल रही है। दीवार

से सटे हुए बड़े बड़े आइने खड़े हैं। कहीं टेबुल, कुर्सी और गुल-दस्ते बड़ी खूबी के साथ सजे हैं। कहीं गलीचे पर मखमली गद्दी बिछी है, उस पर तकिये धरे हैं। द्वार पर फूलों की मालायें टंगी हैं। नीचे मोमी शमादान में कपूर की बत्ती जल रही है। भीतर बाहर सर्वत्र सुगन्ध से आमोदित हो रहा है। इन्द्र की अप्स-राओं को भी रूप में लजाने वाली बेगमें कोई घर के भीतर कोई वरामदे में टहल रही हैं। कोई फूलों से अपनी चाटी को सँवार रही है और कोई अपनी सखी सहेलियों के साथ बैठ कर बड़ी खुशी से गा रही है। आज आनन्द का दिन है, इसी से राज-मन्दिर में भाँति भाँति के उत्सव हो रहे हैं। सारा राजप्रासाद आज आनन्द से परिपूर्ण हो रहा है।

ये सब कौतुक देखते हुए नरेन्द्र वहाँ जा पहुँचे जहाँ स्वयं बादशाह औरङ्गजेब विराजमान थे। नरेन्द्र ने देखा, बादशाह बेगमों के साथ चौसर खेल रहे हैं। चौसर का घर सफ़ेद पत्थर की चौकोर तख्ती पर बहुत खूबसूरती के साथ बना है। गोटे के स्थानापन्न अत्यन्त सुन्दरी नवयौवना कामिनी हैं। गोटे जुदे जुदे रङ्ग की होती है, इस लिए नाज़नियों ने भी जुदे जुदे रङ्ग की पोशाकें धारण कर रखी हैं।

बादशाह का विनोद देख कर नरेन्द्र ज़लेखा के साथ वहाँ से एक अत्यन्त सुसज्जित कमरे में गये। उस कमरे के भीतर तीन चार बेगमें बैठी हुई गा बजा रही थीं। उन सबों के गाने बजाने की मधुर ध्वनि ऊँची अट्टारियों को पार करके यमुना किनारे और आकाशमण्डल में प्रतिध्वनित हो रही है।

उस कमरे से कुछ दूर पर यमुना नदी की ओर संगमरमर के बरामदे में चन्द्रमा की मनोहर सुधासिक्त किरणें आ रही हैं। यह स्थान बिलकुल सूना और शान्तभाव से भरा है। ऊपर नीले आकाश में दो एक तारे दिखाई दे रहे हैं और सुधाकर सुधासिञ्चित प्रकाश से आकाश को शोभायमान तथा संसार को परितृप्त कर रहा है। नीचे नीलवर्णा कालिन्दी कल कल शब्द करती हुई निरन्तर बह रही है। दो एक छोटे जहाज उसके प्रवाह में किसी ओर चले जा रहे हैं। चाँदनी रात में जहाजों को जाते हुए देख कर स्वभावतः दर्शकों के जी उमंग उठते हैं। इस चन्द्रमा के प्रकाश में ताजमहल की शोभा न्यारी ही लोगों के हृदय को लुभा रही है।

बरामदे में एक बादशाह की परिचारिका के सिवा और कोई नहीं था, वह हाथ में सितार लिये बजा रही थी, किन्तु इस समय वह थक कर बरामदे में सफ़ेद पत्थर पर लेटी हुई सुख या दुःख का स्वप्न देख रही है। यमुना की ठंडी हवा उस रमणी के केशपाश के साथ चाँदनी रात में खेल रही है और कभी कभी सितार के तार पर दबाव डाल कर सुख का गान गा रही है। बरामदे में खड़े होकर नरेन्द्र यमुना की कलकल ध्वनि सुन कर और शीतल वायु का सेवन कर मुग्ध हो रहे, उनके हृदय में न मालूम कैसे कैसे नूतन भाव उदित होने लगे। ऐसे ही निःशब्द रात में, ऐसी ही प्रखर तरङ्गिणी नदी के किनारे नरेन्द्र ने वङ्गदेश को छोड़ते समय आखिरीबार हेमलता का वह चन्द्रनिन्दक मुख देखा था वह उन्हें स्मरण हो आया। कुछ देर तक नरेन्द्र का हृदय हेमलता की

भावना में मग्न रहा। तदनन्तर वे आकाश की ओर बार बार देखने लगे और पीछे एक दीर्घनिःश्वास त्याग कर वहाँ से दूसरी ओर गये।

वे जिस ओर जा रहे थे उधर से लोगों के परस्पर बोल चाल का मधुर शब्द उनके कानों में प्रविष्ट होने लगा। अन्दर महल में इस तरह का कलरव सुन कर नरेन्द्र कुछ विस्मित हुए और बड़ी उत्सुकता के साथ जल्दी जल्दी उस ओर जाने लगे। वे ज्यों ज्यों आगे बढ़े त्यों त्यों उनको रमणीगणों के कण्ठनिःसृत कोमल मधुर शब्द और हास्य स्पष्ट रूप से सुनाई देने लगे। वे और भी अधिक विस्मित होकर आगे बढ़े, आखिर वे वहाँ जा पहुँचे जहाँ लोगों की भीड़ लगी थी। वहाँ पहुँच कर उन्होंने देखा, सामने एक बहुत बड़ा आँगन है। उसमें भाँति भाँति के फूलों के पेड़ और लतायेँ लगी हैं। उस आँगन के चारों ओर हर्म्यश्रेणी से फूलों की मालायेँ लटक रही हैं। आँगन में कहीं कहीं खिले हुए पुष्पद्रुम और लताओं की शोभा अपूर्व ही दीख पड़ती है। कहीं केले के शंभ पंक्तिबद्ध गड़े हैं, जिनमें फूलों की माला और आम, अशोक के नवपल्लव इस प्रकार बाँधे गये हैं जो देखते ही बन आवे। कहीं फुव्वारों से चारों ओर जो बूँदें बरस रही हैं वे मालूम होती हैं जैसे मोती बरस रहे हों। लताभवन में, पेड़ों के आस पास, आगे, पीछे, दोनों पार्श्व में ऊपर और नीचे सर्वत्र अनेक वर्ण की दीपावली बल रही है, जिसमें भाँति भाँति की रौशनी निकल रही है। मानो आज वेगमों का अन्तःपुर अपूर्वरूप धारण कर इन्द्र की अमरावती को भी लज्जित कर रहा है। उस आँगन में एक दूकान लगी है, उसी

की भीड़ है । झुण्ड के झुण्ड खरीदार खियाँ इधर से उधर घूम रही हैं ।

दूसरे बाज़ार से इसमें भेद इतना ही है कि यहाँ खरीद फ़रोख़्त करने वाली दोनों खियाँ ही हैं । इस बाज़ार में मर्द की छाया तक भी कहीं देखने में नहीं आती । भारतवर्ष के प्रधान प्रधान राजा महाराजा और सेठ महाजनों की खियाँ सौदा बेचने वाली और खरीद करने वाली थीं बादशाह की बेगमों । जो सब कोमलाङ्गिनी लावण्यमयी युवतियाँ खरीद फ़रोख़्त कर रही थीं । उन सबों का हाव, भाव, मृदु परिहास और वाक् चातुरी देख कर नरेन्द्र चकित हुए ।

पाठकों को यह विदित है कि दिल्ली के बादशाह साल साल नैरोज़ के दिन बेगमों के महल में एक बाज़ार लगाते थे । जिसमें भारतवर्ष की प्रधान प्रधान रूपवती महिलायें बहुमूल्य पदार्थ बेचने आती थीं । अमीर और राजगण अपने अपने परिवार की खियों को उस बाज़ार में इस लिए भेजते थे कि वे उनकी रमणियों को बेगमों के साथ जान पहचान करा दें । पुरुषों में सिर्फ़ बादशाह आते थे । पूर्व प्रथा के अनुसार इस आनन्द के दिन औरङ्गज़ेब ने भी वैसा ही बाज़ार लगाया है और दो एक प्रधान बेगमों को साथ लेकर खुद एक दूकान से दूसरी दूकान की देख भाल कर रहे थे । भाइयों के साथ लड़ाई छिड़ जाने पर रौशनआरा ने अपने प्रियतम भाई औरङ्गज़ेब की बहुत कुछ सहायता की थी, इस लिए आज इस बाज़ार में रौशनआरा की शान-शौक़त का मुकाबला कौन कर सकता है ? उसका दबदबा और ठाट वाट आज सबसे बड़ा चढ़ा

है। औरङ्गजेब की दूसरी बहन जहानआरा ने दारा का पक्ष लिया था, अतएव आज के महोत्सव में जहानआरा नहीं है।

नरेन्द्रनाथ विस्मयोत्फुल्ल नेत्र से इस अद्भुत रूप बाज़ार को देखने लगे। उन्होंने देखा, बादशाह एक रूपवती मुग़ल बालिका के निकट कितने ही रत्नजटित स्वर्णभूषण और साटन आदि बहुमूल्य कपड़ों का मोल जोल कर रहे हैं। दर दाम करने में दोनों एक से एक चतुर हैं। मोल में एक पैसे की घटी बेशी पर दोनों में कभी परिहास लिये वह मीठा वाद-विवाद हो रहा है जो शायद ही नरेन्द्र को कहीं सुनने में आया हो।

औरङ्गजेब ने कहा—“तुम्हारी चीज़ अच्छी नहीं। तुम यहाँ लोगों को ठगने आई हो ?”

चतुर मुग़ल कन्या ने उत्तर दिया—“तुम कैसे ख़रीदार हो ? तुमने ऐसा माल कभी देखा ही नहीं। इसका दर क्या जानोगे ? तुम इस अनूठी चीज़ को लेकर क्या करोगे ? दूसरी दूकान देखो, तुम्हारे लायक चीज़ कहीं मिल जायगी।” इस प्रकार दोनों में बड़ी देर तक वादानुवाद के अनन्तर मूल्य निर्धारित हुआ। ख़रीदार बयाने के तौर पर मानो दो चार रुपये की जगह भूल से दो चार सोने का सिक्का उस दिलदार सौदागरनी को देकर चले गये।

नरेन्द्र इस प्रकार बहुत देर तक बाज़ार का क्रय-विक्रय देखते रहे, पीछे उन्होंने ज़लेखा की आज्ञा के अनुसार सीसमहल में प्रवेश किया। सीसमहल की सजावट और शोभा उन्होंने और भी विलक्षण देखी। खास कर यह महल बादशाह और बेगमों के स्नान के लिए बना है। संगमर्मर का एक बहुत सुन्दर हैज़

बना है। उसके नीचे दो एक छिद्र बने हैं। जिनसे निरन्तर पानी बह रहा है। हैज़ के नीचे पत्थर पर मछलियों का चित्र इस कारीगरी से बना हुआ है जिससे हैज़ के स्वच्छ जल में भाँकने से जान पड़ता है जैसे पानी के नीचे भाँति भाँति की मछलियाँ खेल रही हों। फव्वारे का निर्मल जल बड़े वेग से ऊपर की ओर उठ रहा है और मुक्ताराशि की तरह चारों ओर पत्थर के सहन पर गिर रहा है। छत से लटकती हुई रंग विरंगी हाँडी, कन्दील, झाड़ की जगमगाहट से स्नानागार की शोभा सौगुनी बढ़ रही है। उन विविधवर्ण के काँच-विनिर्गत प्रकाश फव्वारे के जलकणों पर प्रतिहत होकर एक अपूर्व ही शोभा प्रकट कर रहे हैं। नीचे से ऊपर तक चारों ओर रत्नजटित सुचारु दर्पणों में संगमर्मर की दीवार ढकी सी है। यह इस लिए कि जिसमें स्नान करने के समय युवतीगण चारों ओर से अपने खुले वदन को निहार सकें। विलासपरायण सम्राट्गण अपनी प्रणयिनी बेगमों को साथ ले इसी घर में स्नान और जलक्रीड़ा किया करते थे। इस लिए कितने ही देशों से भाँति भाँति की विलासवर्धक वस्तुएँ लाकर यह विलास-भवन सजाया गया है।

आज अनेक देशों, से अनेक यवनी और हिन्दू रमणियाँ इस राजमन्दिर में एकत्र हुई हैं। उनमें कितनी ही रसीली स्त्रियाँ बड़े गौर से सीसमहल की अपूर्व शोभा देख रही थीं। ज़लेखा उन सबों के बीच से नरेन्द्र का हाथ पकड़ कर एक तरफ़ ले गई और एक दर्पण के सामने लाकर उन्हें खड़ा कर दिया। ज़लेखा ने उँगली के इशारे से उस दर्पण में एक प्रतिबिम्ब दिखला

दिया । नरेन्द्र चकित होकर निर्निमेष दृष्टि से उस प्रतिविम्ब को देखने लगे । उस प्रतिविम्ब को देख कर नरेन्द्र के आश्चर्य की सीमा न रही । वे आइने में किसका प्रतिविम्ब देख रहे हैं । क्या वे स्वप्न देख रहे हैं या वे उन्माद-ग्रस्त हुए हैं ? नरेन्द्र का सारा शरीर कांप रहा है । कलेजा बड़े वेग से धड़क रहा है । आँखों में टकटकी बँध गई है । कुछ देर में वह प्रतिविम्ब धीरे धीरे आइने से हट गया । जिसका वह प्रतिविम्ब था वह रमणी घूँघट डाले सीसमहल से बाहर हुई । प्रेमोन्मत्त नरेन्द्र उसके पीछे पीछे चले ।

वह रमणी क्षत्रियाणी के वेष धारण किये हुई थी । नरेन्द्र अच्छी तरह उसको देखने के लिए धीरे धीरे उसके पास आये । पास आने पर भी उसके खुली भुजाओं के सिवा और कोई अङ्ग न देख सके । नरेन्द्र ने उस रमणी का चेहरा देखने के लिए बहुत कोशिश की, पर देखने न पाया, क्योंकि उसने एक बार भी अपने मुँह पर से घूँघट को न हटाया ।

नरेन्द्र भी स्त्री का रूप धारण किये हुए थे, एक बार उनके जी में आया कि उस रमणी से उसके नाम ग्राम की जिज्ञासा करें; किन्तु उनका पहले ही कण्ठरोध हो गया था, बहुत प्रयत्न करने पर भी उनके मुँह से बोल ही न निकला । एक बार उन्होंने चाहा कि उस रमणी का हाथ अपने हाथों में लेकर हृदय शीतल करें, पर उनका हाथ न उठा । प्रत्युत जोर से छाती धड़कने लगी । नरेन्द्र के देखते ही देखते वह रमणी अपनी सखी सहेलियों को साथ ले बाज़ार से रवाना हुई । नरेन्द्र भी उसके पीछे पीछे चले, अनेक कोठरियाँ, अनेक द्वार, अनेक पुष्पोद्यान, और अनेक

महलों का अतिक्रम करके बाहर आये । वहाँ अनेक शिविकायें (डोली) रक्खी थीं । राजपूत रमणियाँ अपनी अपनी डोली पर सवार हुईं । जिस रमणी की ओर नरेन्द्र की दृष्टि गड़ी थी, वह भी शिविका पर आरूढ़ होने का उपक्रम करने लगी । उसकी चेष्टा से जान पड़ा जैसे उसने यमुनानदी और आगरे की शाही इमारत इसके पूर्व कभी नहीं देखी थी । क्योंकि डोली पर चढ़ने के पहले उसने एक बार राजमन्दिर और यमुना के प्रवाह की ओर सवृष्ण नयनों से देखा । यमुना की हवा से उस रमणी का घूँघट हिलने लगा । नरेन्द्र तीव्रदृष्टि से उसके अवगुण्ठनावृत मुख की ओर देखने लगे । नरेन्द्र के हृदय की आतुरता बढ़ने लगी । किन्तु हवा की भोंक से उसका घूँघट मुँह पर से अलग न हुआ, नरेन्द्र को मुख देखने की लालसा बनी ही रही । नरेन्द्र के मानसिक भाव पर कुछ लक्ष्य न देकर वह राजपूत-वेष-धारिणी रमणी शीघ्र डोली पर सवार हो चली गई ।

क्या वह हेमलता थी ? उसकी चाल ढाल से तो ऐसा ही जान पड़ता था, उसके शरीर का गठन, उसकी बाँह और दर्पण में उसके मुखमण्डल का मनोहर प्रतिबिम्ब हेमलता ही का सा देख पड़ा था । किन्तु वह बेगमों के महल में आगरा क्यों आवेगी ? चत्रियाणी का सा वेष-विन्यास ही क्यों धारण करेगी । नरेन्द्र ! सावधान हो, प्रेमान्ध होकर किसको हेमलता समझ रहे हो ? किसके लिए तुम देश-देशान्तर की धूल छान रहे हो ?

अट्टाईसवाँ परिच्छेद ।

आतृस्नेह ।

रत्ननगर के ज़मींदार की उच्च अट्टालिका के पास सुन्दर
 और विस्तृत उपवन था । उसी उपवन से होकर
 गङ्गा के किनारे जाने आने का रास्ता था । उसी
 उपवन में नरेन्द्र और हेमलता दोनों साथ मिल
 कर दौड़धूप करते और खेलते थे । कभी उस नदी के किनारे
 खेलने जाते थे, कभी हँसते, कभी रोते और कभी गाते थे । अब
 वह ज़माना गुज़र गया । वह सुख का दिन अब स्वप्न सा हो गया ।
 नरेन्द्र अशान्तचित्त होकर देश देश घूम रहे हैं । रमेशचन्द्र श्वसुर
 की मृत्यु होते ही ज़मींदार बन बैठे हैं । हेमलता अब बालिका
 नहीं है । वह नये ज़मींदार की अर्द्धाङ्गिनी बन गृहणी पद को
 चरितार्थ कर रही है ।

सन्ध्या समय उस उपवन के रास्ते से दो स्त्रियाँ गङ्गा किनारे
 जा रही हैं, उनमें एक तो हेमलता है और दूसरी रमेशचन्द्र की
 विधवा बहन शैवलिनी । हेमलता की उम्र इस समय पन्द्रह वर्ष की
 होगी, शरीर गौरवर्ण, कोमल और लावण्य से भरा है । उसके
 सभी अङ्ग सुडौल हैं । कोई अंग ऐसा नहीं जो उसके मनोहर रूप
 के अनुरूप न हो । यह सब कुछ होने पर भी यौवनारम्भ की
 प्रसन्नता उसके अङ्ग में लक्षित नहीं होती । जवानी का अपूर्व

विकास उसके मुँह पर दिखाई नहीं देता । उसका चेहरा कुम्हलाये हुए कमल के फूल सा दिखाई देता है । होंठ सूखा हुआ सा दीख पड़ता है । स्थिर दृष्टि में चिन्ता की झलक दीख पड़ती है । असमय में ही उसका चित्त चिन्ता से क्यों जर्जर हो रहा है ? यदि उसके हृदय में कोई चिन्ता न होती, यदि उसका हृदय उमंग से भरा रहता तो क्या वह इसी तरह नम्रतापूर्वक मन्द मन्द चलती ? तो क्या वह छोटे से अधखिले फूल को तोड़ कर इस तरह स्थिरभाव से उसकी ओर निहारती ? जिस खुले, काले, कुञ्चित, सुचिक्कण केशपाश से उसका मुखमण्डल और दोनों नेत्र कुछ ढँके से हैं, उसे ज़रा हटाकर देखो उसके नेत्र जलशून्य, पर दृष्टि स्थिर है, शारीरिक चेष्टा यौवनोचित चपलता से रहित है । हेमलता यद्यपि लम्बी साँस नहीं लेती, तथापि उसके चिन्तानुकूल भाराक्रान्त हृदय से धीरे धीरे उष्णश्वास बहिर्गत हो रहा है । अधखिले यौवन पुष्प के भीतर दुःख कीट का प्रवेश नहीं हुआ है, तथापि वह जीवन के अभाव से कुछ सूखा हुआ और फीका सा दीख पड़ता है । यौवन के अरुणोदय ने चिन्तारूपी मेघ की छाया में पड़ कर एक अपूर्व रूप धारण किया है ।

शैवलिनी की अवस्था पच्चीस वर्ष की होगी । वह विधवा है । उसके शरीर से जवानी की शोभा उतर चुकी है, पर पवित्रता का भाव अङ्ग अङ्ग से झलक रहा है । उसके प्रशस्त ललाट और विशाल नेत्रों में शान्ति का भाव भरा है । शैवलिनी के अङ्ग पर कोई भूषण नहीं है पर तो भी वह श्रीहीन नहीं है । अब भी उसके शरीर में लावण्य बना है । वह सफ़ेद कपड़ा पहने अपने

हृदय की स्वच्छता के साथ ही बाहर की स्वच्छता प्रकट कर रही है। शैवलिनी अपनी सच्चरित्रता से विधवाओं के लिए एक आदर्श रमणी है। वह हेमलता को अपनी छोटी बहन की तरह प्यार करती है। वह मीठी मीठी बातें करती हुई हेमलता के साथ गङ्गातट जा रही है। शैवलिनी का जीवन मेघशून्य आकाश की भांति चिन्तारहित है।

हेमलता बाल्यकाल में नरेन्द्र का मुँह देख कर बहुत प्रसन्न होती थी और उसके साथ मिल कर खेलने में विशेष सुख मानती थी। बाल्यकाल बीत चुकने पर अर्थात् यौवनारम्भ में नरेन्द्र ने हेमलता के हृदय में स्थान पाया था, पर हेमलता यह न समझ सकती थी कि उसका हृदय नरेन्द्रनाथ की प्रतिमूर्ति से क्यों अङ्कित हो रहा है? उसके हृदय में नरेन्द्र का ध्यान क्यों हमेशा बना रहता है? जब नरेन्द्र से उसका चिरविच्छेद हुआ, जब वह एक अन्य पुरुष की सहधर्मिणी होकर नरेन्द्र की प्रतिमूर्ति को अपने हृदय से अलग कर देने के लिए बाध्य हुई तब प्रेम क्या पदार्थ है, यह उसकी समझ में आया; तब मर्मभेदी यातना उसके हृदय को विदीर्ण करने लगी। वह अभी नवविवाहिता बालिका है, किससे अपना दुःख कहे? किससे अपने हृदय की बात कह कर दुःख का बोझ हलका करे?

शैवलिनी जब पाँच वर्ष की थी, तभी वह विधवा हुई। वह बराबर ससुराल में रहती थी, कभी कभी अपने भाई को देखने के लिए वीरनगर आती थी। शैवलिनी बड़ी बुद्धिमती थी, दो तीन बार वीरनगर में आने के साथ उसने हेमलता के अन्तःकरण

का भाव कुछ कुछ जान लिया । वह यह सोच कर, कि यदि मैं इस बालिका को यज्ञ से न रक्खूँगी तो मेरे भाई का बना बनाया घर उजड़ जायगा, बराबर वीरनगर में रहने लगी ।

शैवलिनी के सस्नेह व्यवहार और सान्त्वना-वाक्य से हेमलता के हृदय का दुःख किञ्चित् हास हुआ । शैवलिनी मनुष्य का स्वभाव भली भाँति परखती थी और किसके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए यह भी विशेष रूप से जानती थी । वह हेम का कभी तिरस्कार नहीं करती, बल्कि उसे वह अपनी छोटी बहन के बराबर मान कर हमेशा उसका जी बहलाया करती और उसे धैर्य देती । शैवलिनी की हृदयग्राही सरस और प्रीतिसनी बातें सुन कर कौन ऐसी दुःखिनी होगी जो अपने दुःख को न भूलेंगी ? शैवलिनी गप्प करने में बड़ी प्रवीण थी । वह हेमलता को एक न एक पुराण की पवित्र कथा सुनाती ही रहती थी । हेमलता बड़े चाव से पौराणिक गल्प सुना करती थी । गल्प सुनते सुनते वह रात में सोना भी भूल जाती थी । जब वह शैवलिनी के मुँह से नल-दमयन्ती, सावित्री-सत्यवान् और श्रीजानकी-रामचन्द्र का उपाख्यान सुनती तब उसे यह अच्छी तरह जान पड़ता था कि स्त्रियों को अपने पति की सेवा किस तरह करनी चाहिए । “घोर अन्धकारमय वन है, गहरी रात में चारों ओर वृक्षों की मर्मराहट के सिवा और कुछ सुन नहीं पड़ता । बीच बीच में हिंसक जन्तुओं का चीत्कार सुनाई देता है । राजकुमारी दमयन्ती आज पति के प्रेम का एक मात्र अवलम्बन करके राज्यसुख को तिलाञ्जलि दे भिखारिन बन पति के साथ वन वन भटक रही है । प्यास लगने पर उन्हें पीने को पानी

देती है, विवस्त्र होने पर उन्हें अपने पहरने का कपड़ा देती है। जब चलते चलते उसके पति थक जाते हैं तब वह उनका मस्तक अपनी गोद में लेकर उनके मुख पर अश्वल की हवा करती है। उनके सो जाने पर भी आप जगी ही रहती है। वही स्वामी जब माया-मोह से रहित होकर अभागिनी (दमयन्ती) को अकेली छोड़ कर चले गये, तो भी अभागिनी को पति-चिन्ता के अतिरिक्त इस संसार में दूसरी चिन्ता न थी, स्वामी के पुनर्मिलन के भिन्न दूसरी आशा उसके हृदय में न थी।

अथवा एक बार उस विदेहनन्दिनी की ओर देखो, महर्षि वाल्मीकि के पवित्र आश्रम में चिरदुःखिनी सीता गाल पर हाथ दिये अब भी हृदयेश्वर महाराज रामचन्द्र की चिन्ता कर रही है। सामने दोनों बालक खेल रहे हैं, वह उन दोनों के मुँह की ओर स्थिर दृष्टि से देख रही है, पर मन लगा है श्रीरामचन्द्र के चरण की ओर। जिन्होंने निराश्रया, निष्कलङ्का, निरपराधिनी, अन्तर्वर्त्तिनी, मिथिलेशनन्दिनी महारानी सीता को सर्वदा के लिए निर्वासित किया है, उन निष्ठुर स्वामी की चिन्ता अब भी सीता के हृदय में पूर्ववत् बनी है और उनके चरण-कमलों का ध्यान कर अब भी वह अपने जीवन को धन्य मानती है, वही निर्मोही पति सीता के जीवन का जीवन हैं, हृदय का सर्वस्व हैं ! अहा ! पतिव्रताओं का क्या ही माहात्म्य है !

रात के तीसरे पहर तक हेमलता अपनी धर्मपरायणा नदी के निकट ये सब पवित्र कथायें सुनती, जब वह किसी पवित्र पति-परायणा राजकुमारी की विपद्गार्ता सुनती थी तब उसका हृदय

खण्ड खण्ड होकर कहने लगता था, ननदी की गोद में सिर रख कर वह अश्रुवर्षण के साथ सिसक सिसक कर भर पेट रोती और फिर धैर्य धारण कर कथा सुनती थी। इन सब प्राचीन उपाख्यानों को सुन कर हेमलता मन ही मन सोचती थी, “इस संसार में कोई सुखी नहीं है, सभी दुःख भोग चुके हैं। जब श्रीसीता दुःसह दुःख पा चुकी हैं, सावित्री दुःख भोग चुकी है, दमयन्ती पति-वियोग से असंख्य यन्त्रणा पा चुकी है, उन सबों के आगे मुझ अभागिनी की क्या गणना, मैं तो अपने दुःख से दुःखिनी हो रही हूँ। वे सब जगद्वन्द्या स्त्रियाँ प्रतिव्रता थीं। मैं अभागिनी अब भी नरेन्द्र का सोच कर रही हूँ। देव-तुल्य पति को भूल कर एक अन्य पुरुष की चिन्ता में चिन्तित रहा करती हूँ। धिक्कार है मेरी इस मलिन बुद्धि पर ! मैं अबला हूँ, मेरे बल नहीं है, हे ईश्वर ! तुम सहाय हो, मेरे हृदय से पाप की चिन्ता दूर करो। जहाँ तक मुझ से हो सकेगा, मैं अपने अन्तःकरण को पवित्र रखने की चेष्टा करूँगी।”

हेमलता ने शैवलिनी की विलक्षण प्रीति और धैर्यप्रदान से क्रमशः शान्ति लाभ किया। उसके हृदय से प्रथम प्रेम-स्वरूप भीषण तीर उत्पादित हुआ। अनेक प्रयत्न और अनेक परिश्रम से शैवलिनी का उद्योग सफल हुआ। हेमलता के हृदय में अब नरेन्द्र की वह भावना न रही। किन्तु उसके भूलने में हेमलता ने जो अनेक ताप सहे उससे उसके यौवन की प्रफुल्लता कुछ कुम्हला गई है। चिन्ता न रहने पर भी उसके चेहरे का रङ्ग बदल गया है। हेमलता अब दुःखिनी नहीं है, पर स्वभावतः वह शान्त, नम्र और

संकुचित अवश्य है । अब हेमलता और शैवलिनी रोज़ रोज़ नरेन्द्र की चर्चा किया करती है । शैवलिनी बाल्यकाल से ही नरेन्द्र को भाई कहती थी । अब हेम भी उसे भाई के बराबर समझने लगी । भ्राता के ऊपर कोई सङ्कट आ पड़ने या उसके दूर देश जाने में वहन को चिन्ता होती है । हेम भी भ्रातृभाव से नरेन्द्र के लिए चिन्ता करती है, किन्तु उसका हृदय अब पूर्ववत् विचलित नहीं होता । जब कभी वह सांझ को उस उपवन में टहलने जाती तब उसे एकाएक नरेन्द्र के बाल्यकाल की बात याद हो आती है । भागीरथी का कलकल शब्द सुन कर, निर्मल आकाश में पूर्णचन्द्र का दर्शन करके उपवन के हरित वृक्ष की ठण्ठी छाया में बैठ कर जब उसे अपने बाल्यकाल के संगी की बात स्मरण होती थी तब उसकी आँखों में आँसू भर आते थे । पाठकगण, आप लोग अब उस आँसू को भ्रातृस्नेह का निदर्शनस्वरूप ही समझें । नरेन्द्र के ऊपर जो उसका पहला भाव था, उसको उसने अनेक यत्न से हटाया है । उस भाव को मन से पृथक् करने के लिए उसने बहुत बहुत कष्ट सहे हैं । अनेक यन्त्रणायें सह कर हेम ने उस भाव को हृदय से दूर किया है । यदि हेम के हृदय में उस भाव की एक कण भी छिपी हुई देख पड़े, तो पाठक उसे कदापि क्षमा न करें । हेम के हृदय में नरेन्द्र के पूर्वानुराग का किञ्चित् सम्बन्ध पाया जाय तो वह कदापि क्षमा की पात्री नहीं ।

उनतीसवाँ परिच्छेद ।

एक पौराणिक कथा ।



झातीर से लौट आकर हेमलता और शैवलिनी ने घर का सब काम पूरा किया । पीछे दोनों एक घर में बैठ कर वार्तालाप करने लगीं । हेम ने कहा—“बहन, बहुत दिनों से तुम्हारे मुँह से कथा नहीं सुनी है । आज कुछ अवकाश मिल गया है । कोई पुराण की कथा कहो ।”

शैवलिनी ने प्रोत्तिपत्ती बातों से उत्तर दिया—“तुम कौन कथा सुना चाहती हो, जो कहो सो कहूँ ।”

हेमलता—“राजा हरिश्चन्द्र की कथा बहुत दिनों से नहीं सुनी है । वही कथा कहो ।”

शैवलिनी हरिश्चन्द्र की कथा कहने लगी । महाभारत की कथा यथार्थ में अमृत के तुल्य है । उसकी कथा क्या ही सुमधुर, क्या ही ललित और क्या ही हृदयग्राही है । हा, राजा हरिश्चन्द्र का राज्य गया, धन गया, मान गया, स्त्री पुत्र को लेकर राजा वन वन घूमने लगे । राजपत्नी शैव्या इस समय राजा के एकमात्र प्राणावलम्बिनी जीवनसर्वस्व हो रही थी । सुख के समय, सम्पत्ति के दिनों में रमणी का चित्त बड़ा ही चञ्चल रहता है । वह कितना मान करती, कितना अभिमान करती, कितना

ही प्रणय-कलह करती है। किन्तु हमारा जीवन-रूपी आकाश जब क्रमशः दुःखरूपी बादल से आच्छन्न होने लगता है, जब सांसारिक समस्तसुख अभिनय के अन्त में दीपश्रेणी की भाँति एक एक कर बुझ जाता है। जब आशारूपिणी मृगतृष्णा अनेक रास्तों से घुमा फिरा कर अन्त में हमें मरुभूमि में पटक कर अदृश्य हो जाती है। जब लक्ष्मी हम लोगों से विमुख हो जाती और बन्धुगण हम लोगों को विपत्तिसागर में डूबते हुए छोड़ अलग हो जाते हैं। तब कौन अनन्यहृदया होकर प्रसन्न मन से हमारी सेवा करती है। कौन हमारा उस घोर विपत्ति में साथ नहीं छोड़ती है ? कौन हमारे लिए अपने हाथ से शय्या सँवारती है ? कौन हमारे सूखे कण्ठ में शीतल जल डाल कर हृदय का ताप शमन करती है ? माँ बेटों के अतिरिक्त अनवरत हाज़िर रह कौन हम भाग्यहीनों की रुग्णावस्था में सेवा करके भाँति भाँति की सान्त्वना देती है ? ऐसी एक पतिव्रता स्त्री ही है। जो पतिसुख के आगे अपने सुख को तुच्छ समझ सदा पति की सेवा में तत्पर रहा करती है। सती स्त्री के सिवा दूसरा कौन ऐसा है जो अपनी भूख, प्यास और नोंद को भूल कर भाग्यहीन पति की सेवा में सदा तत्पर रहे ? रमणी का प्रेम अगाध है। उसके अनुराग की सीमा नहीं है। हरिश्चन्द्र के ऊपर कैसे कैसे संकट आये; पर शैव्या ने उनका साथ न छोड़ा। वह बड़े अनुराग और हर्ष से उनकी सेवा करने लगी। हरिश्चन्द्र और शैव्या के दुःख की बात सुन कर हेमलता की आँखों में आँसू भर आये।

हाय ! दुःख पर दुःख ! हरिश्चन्द्र की दुर्दशा का अन्त न

रहा । उन्होंने पुत्र-कलत्र को बेंच डाला । आप भी चाण्डाल के हाथ बिके । अभागिनी शैव्या पतिविरह की घोर यन्त्रणा सह कर दैहिक परिश्रम से अपना और अपने बालक का पालन-पोषण करने लगी । अहा ! इस अवस्था पर भी घोर संकट, घोर यन्त्रणा ! वह एक मात्र पुत्र भी अकाल में ही कालकवलित हुआ । हेमलता से अब न रहा गया । वह ननद की छाती से लग कर आंसू बरसाने लगी ।

कथा समाप्त हुई । राजा हरिश्चन्द्र ने सत्यपालन के प्रभाव से फिर अपनी रानी, राजकुमार और राज्यधन पाये । उनके सुख का संसार फिर बस गया । हेमलता का हृदय शान्त हुआ । कुछ देर दोनों चुप रहीं । पोछे हेमलता ने उठ कर धीरे धीरे खिड़की खोल कर देखा, बाहर चारों ओर चाँदनी छिटकी हुई है । पेड़ सब ठंडी हवा के संयोग से झूम रहे हैं और दूर से गङ्गा के प्रवाह का कलकल शब्द सुनाई दे रहा है ।

शैवलिनी ने धीरे धीरे हेमलता के पास आकर बड़े प्यार से उसका हाथ पकड़ा । हेम क्या सोच रही थी; वह यही सोच रही थी कि पेड़ों पर जो इतने खद्योत (जुगनू) दीख पड़ते हैं, वे भी तो जीव हैं । इन्हें भी तो सुख-दुःख, आशा-भरोसा आदि का ज्ञान होगा । जिस ईश्वर ने राजा हरिश्चन्द्र को विपद् से छुड़ाया, वही इस रात में यत्नपूर्वक इन जुगनुओं को खाना देते और उनका मनोरथ पूर्ण करते हैं । वही इस विपुल संसार में सभी प्राणियों की रक्षा करते हैं । हम लोगों को चाहिए कि एकाग्र मन से उनकी पूजा करें । वही हम लोगों की रक्षा करेंगे ।

हेमलता ने बालिका के सरल स्वभाववश शैवलिनी से पूछा—
“बहन, जो भगवान् दया का समुद्र कहलाते हैं उन्होंने थोड़ी उमर में तुम्हें विधवा क्यों कर दिया ?”

शैवलिनी—“सभी के भाग्य में क्या सब सुख बढ़ा रहता है ? उन्होंने मुझको विधवा कर दिया । पर मुझे दुःखिनी न बनाया । देवता के समान सहोदर भाई दिया है । तुम्हारी ऐसी सुशीला भावज दी है । उन्होंने मेरे लिए वह सोने का संसार बसा दिया है जिसमें मैं दिन रात फूली रहती हूँ । इससे बढ़ कर अब मुझे क्या चाहिए ? मेरे मन में और कुछ लालसा नहीं है । मैं इतना ही चाहती हूँ कि एक बार तीर्थभ्रमण करूँ ।”

हेमलता—“हम लोगों के काशी वृन्दावन जाने की बात स्थिर हुई थी न ?”

शैवलिनी—“हाँ, रमेश ने मेरी तीर्थयात्रा के प्रस्ताव पर अपनी सम्मति प्रकट की है । जहाँ तक सम्भव है अब शीघ्र ही हम लोगों की तीर्थयात्रा होगी ।”

हेमलता—“बहन, तुम्हारे साथ तीर्थ जाने की बात सोच कर मेरे मन में बड़ा ही आह्लाद होता है । कितने ही देश देखूँगी, कितने ही तीर्थों का दर्शन करूँगी । सुना है, नरेन्द्र उसी तरफ कहीं पछाँह देश में हैं । उनसे भी कदाचित् भेंट हो जायगी ।”

शैवलिनी—“हो सकता है ।”

इसी समय रमेश ने चौखट के भीतर पैर रक्खा । शैवलिनी एक बगल से होकर धीरे धीरे उस घर से बाहर चली गई । उसके चेहरे पर कुछ चिन्ता का चिह्न दिखाई दे रहा था ।

शैवलिनी को काहे की चिन्ता थी ? बाहर खड़ी होकर वह यही सोचने लगी कि “हेम, तुम मुझे विधवा जान कर मुझे नितान्त दुःखिनी और अभागिनी समझती हो । किन्तु जो जिस कष्ट को कभी सहन नहीं कर सकती, तुमने उस कष्ट का सहन किया है । उस तीव्र वेदना के आघात से तुम्हारा हृदय चूर चूर हो चुका है । तुम्हारा जीवन हीनप्रभ हो रहा है । तुम्हारी विका-
सोन्मुख यौवनलता मुरझा रही है । इस यौवनोद्गम में इस थोड़ी सी उम्र में तुम्हारा दुर्बल शरीर और सूख गया । होठ देख कर मेरी छाती फटती है । तुम्हारी इस विषम चिन्ता की बात मेरा भाई कुछ नहीं जानता । तुम अभी बालिका हो । उस चिन्ता से अपने चित्त को बचाने के लिए बहुत कुछ प्रयत्न कर चुकी हो, और उसमें कुछ सफलता भी प्राप्त की है । किन्तु नरेन्द्र के दर्शन करने से तुम्हारी क्या दशा होगी, यह मैं नहीं जानती । भगवान् अनाथों के नाथ हैं, असहायों के सहायक हैं । वही तुम्हारे धर्म की रक्षा करेंगे ।”



तीसवाँ परिच्छेद ।

तीर्थयात्रा ।

शैवलिनी फिर घर के भीतर आई और भाई को आसन दे भोजन पर बैठा आप उसके पास बैठ कर पंखा झलने लगी । हेमलता उस घर से बाहर हो द्वार के एक पार्श्व में खड़ी होकर स्वामी का भोजन देखने लगी ।

दोनों भाई बहनों में बहुत देर तक बातचीत होती रही । आखिर रमेशचन्द्र का भोजनकाण्ड शेष हुआ । रात बहुत जा चुकी थी । इसलिए उन्होंने सोने का उद्योग किया । शैवलिनी दूसरे घर में गई ।

हेमलता धीरे धीरे स्वामी के पास आई और बड़ी नम्रता से उनके हाथ में पान का बीड़ा रख दिया । रमेश का हृदय आज कुछ विशेष आह्लादित था । उन्होंने रहस्य में कहा—“हम पान न खायेंगे ।”

हेम—“क्यों ?”

रमेशचन्द्र—“तुम मुझ से न कुछ बात करती हो न कुछ पूछती हो, इसका कारण क्या ?”

हेमलता—“आप जो कुछ पूछते हैं उसका उत्तर मैं देती हूँ ।

दासी को जो कुछ कहना होगा आपसे कहेही गी । पहले आप पान खालें, पीछे मैं आपसे बात करूंगी ।”

रमेशचन्द्र—“क्या सदा हमें तुम्हारा ऐसा ही सूखा मुँह देखना होगा ? कब तुम्हारे शरीर की चेष्टा बदलेगी, कब हम तुम्हारे मुखकमल को विकसित होते देखेंगे ।”

हेमलता—“मेरा शरीर तो अब अच्छा है ?”

रमेशचन्द्र—“हाँ, ईश्वर की कृपा से शरीर तो तुम्हारा कुछ अच्छा सा देख पड़ता है । किन्तु मन तो वैसा ही है । मन का उल्लास देखें तब तो ।”

हेमलता—“मन का उल्लास आप क्या देखेंगे ?”

रमेशचन्द्र—“मन का उल्लास यही कि, तुम्हारे हृदय में किसी तरह का दुःख न रहे ।

हेमलता—“क्यों ? मेरे मन में तो कोई कष्ट नहीं है । बहन के मुख से आज मैंने एक दुःख की कहानी सुनी थी । उसी से मेरी आँखों से दो एक बूँद आँसू टपक पड़े थे ।”

रमेशचन्द्र को इस बात से पूरा सन्तोष न हुआ । उन्होंने फिर कहा—“हम तुम्हारा प्रफुल्ल मुँह कब देखेंगे ?”

हेम इस प्रश्न का कुछ उत्तर न दे सकी । वह सिर नीचा कर धरती की ओर देखने लगी । एकाएक उसे एक बात का स्मरण हो आया । वह इस दफे ज़रा हँस कर बोली—“जब आप अपनी प्रतिज्ञा पूरी करेंगे ।”

रमेशचन्द्र—“कैसी प्रतिज्ञा ?”

हेमलता—“तीर्थयात्रा की ।”

रमेशचन्द्र अब की बार कुछ लज्जित हुए । वे शैवलिनी और हेमलता के अनुरोध से कई बार तीर्थ जाने की प्रतिज्ञा कर चुके थे । किन्तु अभी तक तीर्थ जाने का उन्होंने कुछ उद्योग न किया था । अभी हेमलता की बात से कुछ देर मौन साध कर बोले—
“यदि तीर्थ-भ्रमण से तुम्हारा शरीर और मन यथार्थ में चङ्गा हो तो हम तुमको अवश्य तीर्थ ले चलेंगे । हम कल ही तीर्थयात्रा का सब प्रबन्ध ठीक करेंगे ।”

यह सुन कर हेम प्रसन्न हुई । हेम को कुछ प्रसन्न होते देख रमेशचन्द्र बहुत खुश हुए । उन्होंने हेमलता को छाती से लगा कर स्नेहपूर्वक उसका मुँह चूमा ।

उपर्युक्त घटना के कुछ ही दिन पोछे रमेशचन्द्र ने सकुटुम्ब पश्चिम की यात्रा की । गङ्गातट के समस्त तीर्थस्थानों का दर्शन करके अन्त में मथुरा-वृन्दावन जाने की इच्छा से आगरा पहुँचे । वहाँ रमेश ने प्रधान प्रधान हिन्दू राजाओं से भेंट की और उन लोगों के साथ जान पहचान की । उन राजाओं में किसी एक राजा के अनुरोध से रमेश उन राजाओं के परिवारों के साथ अपने परिवार को नौरोज़ा के महोत्सव की रात में शाही महल के भीतर जाने देने को बाध्य हुए थे । हेमलता लाचार हो राजपूत-महिला का वेष धारण कर राजपूतानियों के साथ आगरे के प्रसिद्ध बेगमों के महल देखने गई थी ।

इकतीसवाँ परिच्छेद ।

जलेखा का पत्र ।



नरेन्द्र आगरा किले के भीतर बेगमों के स्नानागार में आइने में हेमलता के मुँह का प्रतिबिम्ब देख कर आश्चर्य से हतज्ञान हुए थे, यह हम ऊपर कह आये हैं । आखिर वे बहुत देर पीछे निर्मल आकाश और शान्तवाहिनी यमुना नदी की ओर देखते मन ही मन कुछ सोचते विचारते अपने डेरे की ओर बिदा हुए । नरेन्द्र उस घर में आये, जहाँ उन्होंने जनाने कपड़े पहने थे, वहाँ एक चिराग जल रहा था, मनुष्य कोई न था । वे द्वार बन्द करके अपने बदन का कपड़ा खोलने लगे । सहसा उनके वक्षस्थल से एक चिट्ठी नीचे गिरी । उन्होंने भट उसे उठा कर देखा, वह उर्दू भाषा में लिखी थी । नरेन्द्र दिये के निकट बैठ गये और पत्र खोल कर पढ़ने लगे । दो एक पंक्ति पढ़ने ही से उन्होंने समझ लिया कि यह जलेखा का पत्र है । तब वे और भी अचम्भे के साथ पढ़ने लगे । पत्र में यही लिखा था:—

प्यारे नरेन्द्र !

“मैं उन्मादिनी हूँ, हतभागिनी हूँ, इसी से यह पत्र लिख रही हूँ । मैं क्या लिख रही हूँ यह मैं नहीं जानती । मेरी आँखों के सामने चारों ओर अँधेरा छाया है । मुझे कुछ नहीं सूझता । मेरा

सिर घूम रहा है; तथापि मृत्यु के पूर्व एक बार अपने मन की बात तुम से कहे जाती हूँ। जब यह चिट्ठी तुम्हारे हाथ पड़ेगी, उस समय यह अभागिनी इस संसार में ढूँढ़ने से भी कहीं न मिलेगी।”

मैं शाहजहाँ की बड़ी बेटी जहानआरा की एक परिचारिका हूँ। जिस दिन काशी का युद्ध हुआ था उस दिन किसी कार्यवश मैं और मशरूर नाम का एक खोजा राजा जयसिंह के खेमे में थे। उसी दिन युद्ध में घायल होकर तुम उस खेमे में लाये गये थे। तुमको देखते ही मेरा दिल हाथ से जाता रहा। उसी दिन प्रेम-भुजङ्गम ने मेरे हृदय को डस लिया। उस दिन से मैं रोज़ ही रोज़ विष की ज्वाला से जलने लगी। पर मैं इस यन्त्रणा को सह कर तुम्हारी सेवा में प्रवृत्त हुई। मैं सारी रात जाग कर तुम्हारा मुँह देखा करती थी। जब मैं तुम्हारे आयत ललाट, विशाल नेत्र और स्मित-विकसित मुँह देखती थी तब मैं बावली बन जाती थी। बेहोशी की हालत में कभी कभी तुम क्रोध करके अस्तव्यस्त कह बैठते थे। मैं उन बातों का कुछ खयाल न करके मानसिक पीड़ा से चुपचाप रोया करती थी। तुम उस अचेतनावस्था में जब कभी स्नेह से मेरा हाथ पकड़ते थे, उस समय मेरा समस्त शरीर रोमाञ्चित हो जाता था। क्यों हो जाता था—यह मैं नहीं जानती। जब घर में कोई नहीं रहता था तब मैं तुम्हें निद्रित देख बड़ी उत्सुकता के साथ तुम्हारा मुँह चूमती थी, मुझे उन्मादिनी जान कर इसके लिए क्षमा करना।

जब तुम्हारे जीवन की आशा हुई तब तुम नाव पर चढ़ा कर बनारस से दिल्ली लाये गये। मैं किसी युक्ति से तुमको

छिपा कर शाही महल के अन्दर अपने घर में ले आई । मैंने सिर्फ तुम्हारा प्रसन्न मुख देखने ही के लिए तुम्हें अपने घर में छिपा रक्खा था । मैं सारी रात तुम्हारी चारपाई के पास बैठ कर रात बिताती थी । तुम्हारे मुँह की ओर बारबार देख कर भी मुझे तृप्ति न होती थी । रातभर मैं तुम्हारा मुँह निहारा करती थी । जब कभी मैं अपने चित्त के वेग को नहीं रोक सकती, तब तुम्हारे चैतन्यशून्य शरीर को छाती से लगा कर अपना हृदय शीतल करती थी ।

दुष्ट मशरूर ने यह हाल शाहज़ादी से जाकर कहा । अन्तःपुर में मैंने एक सर्द को लाकर रक्खा है, यह सुन कर शाहज़ादी मारे क्रोध के आगबबूला हो गई । उसने मेरे और तुम्हारे प्राण दण्ड की आज्ञा दी । मशरूर ने फिर शाहज़ादी के पास जाकर नरेन्द्र की अपूर्व वीरता और सुन्दरता की बात सुनाई । शाहज़ादी ने अपनी पूर्व की आज्ञा को रोक दिया और मुझे कारागार के भीतर कैद करके रक्खा; इसलिए कि तुम्हारे आरोग्यलाभ होने पर वह फिर हमारे और तुम्हारे दोषों का विचार करेगी ।

मैं कैद हुई । दिनरात घर में अकेली बैठी रहती । किसी को मेरे पास आने की आज्ञा न थी । तुमको न देख कर जो असह्य यातना मुझे होती थी उसका वर्णन मुझसे नहीं हो सकता । आखिर जब उस यातना को मैं किसी तरह नहीं सह सकी तब मैंने द्वारपाल और मशरूर की बड़ी बड़ी 'खुशामदे' करके उन्हें अपनी ओर मिला लिया और उन दोनों की सहायता से मैं चुपचाप तुम्हें देखने जाती थी । जब तुमने आरोग्यलाभ किया तब तुम कभी कभी मेरी ओर

एहसान की नज़र से देखते थे। क्या यह बात अब याद होगी ? मैं देर तक तुम्हारे पास नहीं ठहर सकती थी और न तुमसे कुछ बात ही कर सकती थी। कठोर हृदय मशरूर तुरन्त मुझे लौटा कर क़ैदख़ाने में ले जाता था। वहाँ जाकर फिर मैं तुम्हारे ध्यान में लीन हो जाती थी।

क्रमशः विचार का दिन आ पहुँचा। क्या वह दिन तुम्हें याद होगा ? ज़हानआरा रत्नजटित सोने के सिंहासन पर बैठी थी। उसके चारों ओर अदब के साथ सखी सहेली और अनुचरी खड़ी थीं। शाहज़ादी साहबा ने उसी दिन पहले पहल तुमको देखा; उसने जो कठोर आज्ञा दी, क्या वह तुमको स्मरण है ? मैं उसका पैर पकड़ कर कितनी ही रोई गिड़गिड़ाई, और हाथ जोड़ कर कहा, शाह-ज़ादो साहबा, मेरे पाप का क्या यही उचित दण्ड है ? आप भी तो खो जाति हैं, पर उसने मेरी विनती पर कुछ ध्यान न दिया। ज़हानआरा ! तुम्हारा हृदय क्या पत्थर का बना है ? क्या तुम नीति-पथ से कभी विचलित नहीं होती ? बेगम साहब ! तुम स्वामिनी हो, मैं तुम्हारी दासी हूँ, मुझ में स्वतन्त्रता नहीं है। इसी से मेरे पाप का तुमने इतना कठोर दण्ड दिया है। किन्तु तुम जो चाहो, कर सकती हो, तुम बादशाह की प्यारी लड़की हो, सोने के सिंहासन पर बड़े गर्व से बैठी हो, पर मेरी अपेक्षा भी तुम घोर *पापिनी हो, उसका क्या कुछ दण्ड नहीं है ?

* ज़हानआरा (बेगम साहब) के प्रणय की कितनी ही बातें उस समय में प्रचलित थीं, फ़्रांसदेश के एक यात्री ने उसके सम्बन्ध में कितनी ही बातें अपनी किताब में लिखी हैं। ग्रन्थकर्ता।

किस कौशल से मैं उस रात तुमको लेकर क़िले से निकल भागी, यह कहने की कोई आवश्यकता नहीं । तदनन्तर शीघ्र ही तुमने सैनिक वेष धारण कर दिल्ली का त्याग किया । यह अभागिनी भी मतवाली बन कर पुरुष वेष से तुम्हारे साथ साथ चली । नरेन्द्र ! मैं तुम्हारी प्रणयपात्री हूँगी, यह आशा मेरे हृदय में न थी । मैं केवल इसी सुख के लिए तुम्हारे साथ लगी कि दिन रात तुम्हारे पास रहूँगी, दिन रात प्रेम-पिपासु चकोर की भाँति तुम्हारा मुखचन्द्र देखती रहूँगी । दिन में तुम्हारे मुँह से सुधासनी मीठी मीठी बातें सुनूँगी और रात में सांझ से आधीरात तक या आधीरात से प्रातःकाल तक तुम्हारे निद्रित मुखकमल की शोभा देख कर हृदय की पिपासा निवारण करूँगी । इस आशा से मैं तुम्हारे साथ दिल्ली से सिप्रा नदी और सिप्रा से राजस्थान तक बराबर घूमती रही । संसार में कौन ऐसी जगह है, नरक में कौन ऐसा भयङ्कर स्थान है, जहाँ इस सुख की आशा से यह अभागिनी तुम्हारे साथ जाने में आनाकानी करती ।

बत्तीसवाँ परिच्छेद ।

पत्र की समाप्ति ।



रेन्द्र ! मैं जानती हूँ, तुम भी किसी को हृदय से चाहते हो । जो हिन्दूरमणो तुम्हारी प्रेमपात्रो है उसे भी मैंने देखा है, किन्तु तुम प्रेम के कारण कभी पागल न हुए । मेरा जन्म तातारदेश में है । वहाँ के निवासी लोग बड़े उग्रस्वभाव के होते हैं । मैं तो बाल्यकाल से ही अत्यन्त उग्रस्वभावा थी । मुझे क्रुद्ध होते देख बालकगण खेल छोड़ कर मेरे सामने से हट जाते थे । मेरे पिता एक लड़ाई में हत हुए । मैं बाँदी बना कर दिल्ली लाई गई और बादशाह के हाथ बेची गई । स्वाधीनता तो मेरी जाती रही । किन्तु उग्रस्वभाव न गया । मालूम होता है उष्णप्रधान भारतवर्ष के प्रखर सूर्यताप से मेरे शरीर का शोणित और भी गर्म हो उठा । शाही महल में रह कर तातारदेश की स्त्रियाँ कौन काम करती हैं, शायद यह तुम नहीं जानते होगे । हम लोग बेगमों के महल की रक्षा करती हैं ? हम लोग अस्त्रपरिचालन में मूर्ख नहीं हैं । वक्त्र पड़ने पर तलवार और कटार से अच्छी तरह काम ले सकती हैं । बेगमों की आज्ञा से कैसे कैसे भयङ्कर काम करती हैं, यह संसार के साधारण लोग क्या जानेंगे ? मैं उन सब कठिन कार्यों में लिप्त होकर असाध्य-कार्य भी कर गुज़रती थी । मेरे इस असा-

धारण गुण के कारण बेगम साहब—मेरे उग्रस्वभाव जनित क्रोध को सहन करती थी ।

जब दिल्ली परित्याग कर मैंने तुम्हारा साथ पकड़ा, तब भी मेरा स्वभाव कुछ न बदला । दीवानी बन कर तुम्हारे साथ रहने लगी ।

उदयपुर के सरोवर में सन्ध्याकाल नाव पर चढ़ कर हम तुम दोनों घूमने जाते थे, यह स्मरण है ? मैं तुमको हमेशा ही चिन्तित देखती थी । किन्तु तुम क्या सोचते थे, यह मैं नहीं समझती थी । मैं तुम्हारी चिन्ता का कारण कुछ स्थिर नहीं कर सकती थी । एक दिन मैं नाव में बैठी थी, तुम मेरी गोद में सिर रख कर सोये थे और चन्द्रबिम्ब की ओर देख रहे थे । मैं भी तुम्हारा मुखचन्द्र निहार रही थी, तुम्हारे वालों को सवार रही थी और तुम्हारी उँगलियों को अपने हाथ में लेकर खेल रही थी । तुम एकाएक दीर्घनिःश्वास त्याग कर बोले—“हेम ! क्या इस जीवन में फिर तुम्हें देखेंगे ?” मैं बङ्ग भाषा अच्छी तरह नहीं जानती थी, तथापि यह बात मैं समझ गई । मेरे मन में सन्देह उत्पन्न हुआ ।

स्त्रियों के मन में जहाँ एक बार सन्देह उत्पन्न हुआ, तहाँ वह फिर शीघ्र तिरोहित होने वाला नहीं । जबसे मैंने तुम्हारे मुँह से हेम का नाम सुना तब से हेम का परिचय जानने के लिए मैं बराबर उत्सुक रहने लगी । तुम्हारी चिट्ठी-पत्रों चुरा कर दूसरों से पढ़ा कर सुन लेती थी, बात ही बात में तुम्हारे मुँह से वीरनगर की सारी बातें मैंने सुनीं । तब मेरे मन में ईर्ष्या

की आग एकदम प्रज्वलित हो उठी । मैं अब इस उद्योग में लगी कि तुम्हारे मन से हेमलता का अनुराग दूर करके वहाँ अपने अनुराग का आसन जमाऊँ ।

हिन्दूधर्म में तुम्हारी विशेष निष्ठा देख कर मैं एकलिङ्गेश्वर महादेव के मन्दिर के गुसाईं के पास अपने इष्ट लाभ की आशा से गई । पहले मैं जिन महात्मा के पास गई वे बड़े तेजस्वी और धार्मिक थे । उन्होंने मेरा समस्त प्रस्ताव सुन कर लात मार कर मुझे भगा दिया । इस प्रकार तीन चार गुसाइयों के पास गई और उसी तरह अपमानित होकर अन्त में तुम्हारे परिचित शैलेश्वर के पास गई । वे प्रचुर धन के लोभ से मेरे इस इष्ट-साधन पर सम्मत हुए । मैं उसी समय तीन हजार रुपये के मूल्य का एक हीरे का कँगना उसके हाथ में देकर और एक बहुमूल्य मोती की माला दिखला कर बोली, यदि तुम किसी कौशल से नरेन्द्र के हृदय से हेमलता की चिन्ता हटा कर मुसलमान का मज़हब उनसे क़बूल करा सकोगे तो यह मोती की माला मैं अपने हाथ से तुम्हारे गले में पहना दूँगी ।

तुम पूछोगे कि इतना धन मैंने कहाँ पाया । शाहज़ादी की बाँदियों के भी धन की कमी नहीं थी । मैं तो जहानआरा की अन्तरङ्ग दासियों में थी । मुझे धन-सम्पत्ति की कमी क्यों होती ? देश के बड़े बड़े अमीर, राजा, महाराजा जब कुछ प्रार्थना करने बादशाह के पास आते थे तब जहानआरा को बिना कुछ नज़र दिये उन लोगों का कार्य-सिद्ध नहीं होता था । कोई एक उच्च पद का प्रार्थी है, कोई अपहृत धन सम्पत्ति फिर पाने के लिए

दरबार कर रहा है । किसी ने प्रजा के ऊपर कुछ अत्याचार किया है, उसकी क्षमा चाहता है । किसी ने दूसरे की जागीर हड़प करली है, उसका एक नया सनदपत्र चाहता है । कोई सेनापति युद्ध में परास्त हुआ है, उसकी क्षमा चाहता है । किसी के ऊपर बादशाह का अयुक्त क्रोध हुआ है, उस क्रोध से निस्तार पाना चाहता है— इस तरह के प्रार्थी लोग शाही दरबार में रोज़ रोज़ आते ही जाते रहते हैं । वे सब प्रार्थिगण भाँति भाँति के बहुमूल्य पदार्थ, हीरे, मोती और मानिक आदि उपहार बेगम साहबा के पास भेज कर प्रधान बाँदियों के द्वारा अपनी अपनी दरखास्त भेजते थे । इस चक्रचाल में बेगम साहबा की बाँदियाँ भी अपनी मुट्ठी गरम करतीं और खूब मालामाल होती थीं ।

उसके अनन्तर शैलेश्वर ने जो जो उपाय रचे थे वे तुम जानते ही हो । वह उपाय विफल हुआ । मेरी आशा पूरी न हुई । मैंने दो दिन उस पर्वत की गुफा में खुद जाकर तुमसे भेट की थी । तुम मद्य पीकर नशे में चूर थे, मैं नहीं जानती तुमने मुझे देखा या नहीं । प्रथम दिन मैं तुम्हारे पैरों पर गिर कर रोई थी । दूसरे दिन तुम्हारे प्राण संहार पर उद्यत हुई थी । मेरे हाथ से तलवार छुट पड़ी । तातारियों के हाथ से तलवार गिर जाय, यह पहला ही अवसर था । मैं ऐसी कमज़ोर हूँ, इसके पहले मैं नहीं जानती थी । पोछे तुम्हारे साथ मैं फिर आगरा आई । पता लगाने पर मालूम हुआ कि वङ्गदेश से एक धनाढ्य ज़मोदार आया है । पोछे तुम्हारी हेमलता को भी देखा । पापिष्ठ नरेन्द्र, तुम्हारी प्रेम-पात्री हेमलता दूसरे की स्त्री है । धिक्कार है तुम्हारे इस गहिँत प्रेम

पर ! ओफ़ ! अब यह यातना मुझसे सही नहीं जाती । तीन दिन के अनन्तर पहर रात बीतते तुम मथुरा के गोलोकनाथ के मन्दिर में उस परछी को देख सकते हो । तुमने मुझे हतभागिनी बनाया, इस लिए मैं भी तुम्हें हतभाग्य बना कर छोड़ूँगी । इसी लिए मैंने अपना इतना जीवन-वृत्तान्त तुमसे कह सुनाया है और इसी लिए शाही महल में लेजाकर तुमको हेम का दर्शन कराया था ।

मेरी मृत्यु निकट आ पहुँची । किन्तु प्रतिहिंसा तातारियों का जातीय धर्म है । मैं अपने जातीय धर्म को नहीं भूल सकती । अब भी मेरे शरीर का शोणित ठण्डा नहीं हुआ है ।

ओफ़ ! मेरा सिर घूम रहा है । यदि इस प्यासी को स्नेहजल देकर तुम जीवन-रक्षा करते तो यह यवनी कभी अकृतज्ञ न होती । जब तक देह में प्राण रहता तब तक—किन्तु वह कहने की अब आवश्यकता ही क्या ? इस जीवन में अब तुमसे भेट न होगी । सदा के लिए विदा होती हूँ । यदि मृत्यु के अनन्तर फिर कभी तुमसे भेट होगी तो निष्ठुर नरेन्द्र ? मैं अपने हृदय को चीर कर आन्तरिक भाव तुमको दिखलाऊँगी । तब तुम मुझे प्यार करोगे । यदि तब भी तुम्हारी कठोरता दूर न होगी तो इसी कटार से तुम्हारे पाषाण हृदय को खण्ड खण्ड कर डालूँगी ।

उन्मादिनी ज़लेखा ।

ज़लेखा का पूरा पत्र पढ़ चुकने पर नरेन्द्र की आँखों से आँसू टपक पड़े । वे चुप चाप चिन्ता करते हुए घर के बाहर निकल आये । रात नाम मात्र की बच रही थी । सारा शहर निस्तब्ध था । नरेन्द्र

टहलते टहलते बहुत दूर निकल आये । देखा, सामने यमुना नदी का प्रखर प्रवाह जारी है ।

नरेन्द्र एक लम्बी साँस लेकर वहाँ से लौटे हुए आ रहे थे । ऐसे समय में उन्होंने देखा, यमुना के कछार में एक जगह कितने ही लोग इकट्ठे एक मुर्दे को धरती में गाड़ रहे हैं । नरेन्द्र के पूछने पर उनमें से एक व्यक्ति ने कहा—“जिस मृतक को हम लोग मिट्टी दे रहे हैं वह पहले बेगम की एक प्रसिद्ध बाँदी थी । पीछे वह एक हिन्दू सैनिक पर मोहित हो उसके साथ बाहर निकल गई । मालूम होता है, उसी निर्दय सैनिक ने इस समय उसकी हत्या की है । उसके हृदय में यह तेज कटार बिलकुल धसी हुई थी । इस हतभागिनी का नाम ज़लेखा था ।

तेतीसवाँ परिच्छेद ।

मथुरा ।



मध्या समय गम्भीर यमुना नदी के किनारे मथुरा नगरी नवनागरी की भाँति अत्यन्त सुन्दर शोभायमान देख पड़ती थी । सूर्यास्त हो चुका है । आकाश में एक एक कर कितने ही तारा-गण निकल चुके हैं और निकलते ही जा रहे हैं । यमुना के शीतल जल के स्पर्श से वायु में ठंडक आ गई है । सभी लोग शान्तभाव धारण किये अपने अपने कामों में लगे हैं । कहीं किसी तरह का गोलमाल दिखाई नहीं देता । मथुरा के पत्थर के बने घाट यमुना जल के भीतर दूर तक चले गये हैं । वृक्ष और कुञ्जवन की ओट में मथुरा के गोलोकनाथ का मन्दिर देख पड़ता है ।

धीरे धीरे रात गम्भीर हो चली । हेमन्तकाल की चाँदनी में नदी, गाँव, घर वृक्ष और मन्दिर आदि ने एक विचित्र ही शोभा धारण की है । आकाश के समुद्र में मानो चन्द्रमा धीरे धीरे डूबे जा रहे हैं । नदी के जल में दो एक छोटी नौका वही जा रही है । नदी के दोनों कछारों में हरित वृक्षों की श्रेणी शान्तभाव से खड़ी है । मालूम होता है जैसे चन्द्रमा की सुधा-सींची किरणों से तृप्त होकर सारा संसार सुख की नींद सो रहा है ।

एकाएक मथुरा नगर के भीतर सायंकाल की पूजा आरम्भ हुई । चारों ओर देव-मन्दिरों में शंख-घड़ी-घंटों की धूम मच गई । वह सुमधुर शब्द दूर से सुनने में अत्यन्त प्रिय मालूम होता था । धीरे धीरे वह घण्टारव चारों ओर फैलने लगा ।

नदी के किनारे एक पत्थर के बँधे हुए घाट के ऊपर गोलोकनाथ का मन्दिर है । उस मन्दिर में पूजा-आरती हो रही थी । बहुत से ब्राह्मण और पुजारी लोग उच्च स्वर से सायंकाल का गीत गा रहे थे । उस पूजा आरती के समय कितने ही दूर देशीय यात्री उपस्थित थे । उन यात्रियों में स्त्रियों की ही संख्या अधिक थी । वे लोग भिन्न भिन्न देश से इकट्ठे होकर आज गोलोकनाथ जी का दर्शन करके जीवन को सफल मान कृतार्थ हुए ।

आरती समाप्त हुई । यात्री लोग प्रायः सभी अपने अपने स्थान पर गये । केवल पाठकों की पूर्व परिचित दो स्त्रियाँ उस मन्दिर के पास एक पेड़ के नीचे खड़ी होकर बातचीत कर रही थीं ।

हेमलता मुस्कुरा कर बोली—“बहन, मुसलमानी ने कहा था कि आज पहर रात बीतते बीतते नरेन्द्र के साथ भेट होगी । उसकी यह बात तो सच न हुई ?”

शैवलिनी बड़ी बुद्धिमती थी । हेम की बात सुन कर वह भट समझ गई कि यद्यपि हेम हँसते हँसते यह बात कहती है तथापि उसका हृदय आज सचमुच ही उद्वेग से परिपूर्ण हो रहा है । नरेन्द्र के दर्शन की आशा से हेम की छाती आज बड़े वेग से धड़क रही है, और उसका शरीर भी रह रह कर काँप उठता है ।

शैवलिनी मन ही मन सोचने लगी, न मालूम आज क्या होने वाला है ? हेम अभी एक नौजवान लड़की है । भला बुरा कुछ नहीं समझती । नरेन्द्र को देखते ही उसे पूर्व की सब बातें स्मरण हो आवेंगी । पूर्वानुराग की असह्य यन्त्रणा क्या वह सह सकेगी ? प्रकाश में बोली—“क्या तुम उस उन्मादिनी की बात का विश्वास करती हो ? नरेन्द्र कहाँ किस देश में हैं—यह कौन जाने ? तुम उनके साथ मथुरा में भेंट होने की क्या आशा कर रही हो ?”

हेमलता—“जलेखा की और सब बात तो ठीक हुई थी ।”

शैवलिनी—“वे लोग इसी प्रकार मिथ्या आशा दूसरों के हृदय में उपजाती हैं । दो बात सच कहती हैं तो उसके साथ एक झूठ भी बोल देती हैं । देखो, अभी तक हम लोगों की दासी नहीं आई । यदि मैं यहाँ आने का रास्ता नहीं जानती तो मैं और तुम दोनों स्थान ही पर लौट जातीं ।”

हेमलता—“देखो वहन, मुझे मालूम हो रहा है जैसे यही हम लोगों का वीरनगर है । और यहीं गङ्गा हैं । और बाल्यावस्था में चाँदनी रात में मैं खेलती थी, तुम्हारे साथ खेलती थी और—और—और, सबके साथ खेलती थी । वह सब बात अभी एक एक कर याद आ रही है ।”

शैवलिनी का चित्त कुछ और भी उद्विग्न हुआ । वह अपनी घबराहट का कारण छिपाने के व्याज से यह कह कर उत्सुकता दिखलाने लगी कि दासी के आने में इतना विलम्ब क्यों हो रहा है । हेम शैवलिनी के चेहरे या उसकी बात पर ध्यान न देकर

कहने लगी—“देखो बहन, यह नाव कैसी तीर की तरह आ रही है। माँझी लोग किस तेज़ी से नाव खे रहे हैं। मालूम होता है, जैसे नाव उड़ती हुई इस तरफ़ आ रही हो।”

शैवलिनी ने उस ओर देखा। उसके हृदय की आशङ्का दुगुनी बढ़ गई। जिस बात का सन्देह उसके मन में था वही आगे आया। नाव जब तीन चार हाथ घाट लगने ही को थी, तभी एक सैनिक उस नाव से कूद कर घाट पर आ खड़े हुए। सैनिक दूसरा कोई नहीं, वही नरेन्द्रनाथ थे।

हेम वृत्त की छाया में थी। नरेन्द्र उसे न देख कर मन्दिर के भीतर गये। किन्तु हेम ने नरेन्द्र को देखा था। नरेन्द्र को देखते ही मानो उसकी नस नस में विजली दौड़ गई। उसका मुँह एक दम लाल हो गया। कुछ ही देर बाद उसके चेहरे पर ज़र्दी छा गई। उसका सारा शरीर कांपने लगा। मस्तक पर पसीने की बूँद झलकने लगी। वह बेहोश होकर धरती पर गिरा ही चाहती थी, कि शैवलिनी ने झट लपक कर उसे पकड़ लिया। जब हेम का मिजाज़ कुछ ठिकाने आया तब शैवलिनी ने गम्भीर स्वर से कहा—“हेम, मैं तुमको बहन से भी बढ़ कर चाहती हूँ। मेरी बात मानो, तो आज नरेन्द्र के साथ भेंट न करो। स्थान पर चलो। तुम भी मुझे बड़ी बहन की तरह मान कर मेरा आदर करती हो। मेरी बात सुनो। यहाँ से उठ चलो। तुम अभी बालिका हो। हृदय के वेग को रोकना नहीं जानती। आज बहुत दिनों बाद एकाएक नरेन्द्र से भेंट होने और उसके साथ बातचीत करने पर क्या विपद् घटेगी—यह भगवान् जानें।”

शैवलिनी की यह बात हेम ने सिर नीचा करके सुनी। वह बड़ी देर तक धरती की ओर देखती रही। उसकी आँखों से दो बूँद आँसू टपक कर खच्छ बालू पर गिरने के साथ अदृश्य हो गये। उसने फिर धीरे धीरे अपना सिर ऊँचा किया। अब उसके चेहरे पर उद्वेग का चिह्नमात्र भी दिखाई नहीं देता। उसका मुख शान्त और प्रसन्न दीख पड़ा। केवल उसकी आँखों के आँसू अब तक सूखे न थे।

हेमलता शैवलिनी की ओर देख कर बोली—“बहन, तुम मेरे प्राण से भी बड़ कर प्रिय हो; तुम मुझ पर पूरा विश्वास रखो। इतने दिन जो तुमने धर्म का उपदेश दिया है वह वृथा नहीं हो सकता। वह सब मेरे हृदयपट पर अङ्कित है। मैं अविश्वासिनी नहीं हूँ। इतने दिनों बाद आज मेरी देवपूजा सार्थक हुई। इस पवित्र भूमि में, इस पवित्र देवमन्दिर में खड़ी होकर मैं अविश्वासिनी न बनूँगी। जो मेरे प्रधान देवता हैं, जो देवतुल्य पति मुझ पर अनुराग रखते हैं, जो मेरे जीवन के सर्वस्व हैं, प्राण रहते यह दासी उनकी अविश्वासिनी न होगी। बहन, तुम मुझ पर सन्देह न करो। मुझे खोटी मत समझो। यदि तुम मुझे खोटी समझोगी तो इस संसार में मुझ अभागिनी को कौन प्यार करेगा?”

हेमलता की आँखों से आँसू बह कर उसके दोनों कपोलों को भिगा रहे थे।

हेमलता की यह बात सुन कर शैवलिनी का चित्त शान्त हुआ। उसके नेत्रों में भी आँसू भर आये। वह बड़े स्नेह के साथ

हेम की आँखों से आँसू पोछ कर बोली—“हेम, मुझे क्षमा करो । तुम धर्मपरायणा हो । तुम पतिव्रता हो । मैंने जो तुम्हारे ऊपर कुछ सन्देह किया था, उसके लिए मैं तुमसे क्षमा माँगती हूँ ।”

हेमलता—“बहन, तुम क्षमा की बात क्या कहती हो । तुम मुझ से क्षमा की प्रार्थना न करो । तुम्हारी दया, तुम्हारी प्रीति, तुम्हारा ऋण इस जन्म में मैं न चुका सकूँगी । मैं सात जन्म जनमूँ, तुम्हारी सी बहन पाऊँ, यही मैं बार बार भगवान् से माँगती हूँ ।”

शैवलिनी ने हेमलता को छाती से लगा लिया । कुछ देर दोनों चुप रहीं । दोनों की आँखों से आँसू वह रहे थे । पीछे शैवलिनी ने कहा—“रात होती है । जाओ, नरेन्द्र से भेंट कर आओ ।”

शैवलिनी वहीं पेड़ के नीचे बैठ कर हेमलता के आने की प्रतीक्षा करने लगी । हेमलता ने मन्दिर में प्रवेश किया । हेमलता के हृदय में अब नाम मात्र का भी उद्वेग नहीं है । वह धीरे धीरे नरेन्द्र के पास जाकर खड़ी हुई और सिर झुका कर धरती की ओर निहारने लगी ।

बहुत दिनों में हृदय की आराध्य देवी हेम को देख कर नरेन्द्र का जी उद्वेग से भर गया । वे कुछ बोल न सके । केवल हेम का हाथ पकड़ कर वे निर्निमेष दृष्टि से उसके सुललित मुखचन्द्र की ओर देखने लगे । नरेन्द्र का शरीर काँपने लगा । उनकी आँखों से झर झर आँसू गिरने लगे । नरेन्द्र की इस अवस्था को हेम न सह सकी । वह नरेन्द्र के ऊपर से झट दृष्टि हटा कर नीचे की ओर देखने लगी । उसकी आँखों में आँसू भर आये ।

बहुत देर पीछे हेमलता नरेन्द्र की ओर स्थिर दृष्टि से देख कर बोली—“नरेन्द्र !” .

नरेन्द्र ने देखा, हेम के मुँह पर उद्वेग का चिह्न नहीं है। न कुछ लज्जा का ही चिह्न है। उसका चेहरा साफ़ आइने की तरह झलक रहा है। फिर हेमलता धीरे धीरे बोली—“नरेन्द्र !”

चाँतीसवाँ परिच्छेद ।

माधवी-कङ्कण का यमुना में विसर्जन ।

लोकनाथ जी के मन्दिर के सभी दीप प्रायः एक एक कर बुझ गये हैं । जो लोग बाहर के थे, वे लोग दर्शन करके चले गये हैं और मन्दिर के रहनेवाले सभी सो गये हैं । मन्दिर और खम्भों के ऊपर चन्द्रमा की सुधास्निग्ध स्वच्छ किरण पड़ने से उनकी शोभा और भी बढ़ गई है । एक तरफ़ उन खम्भों की छाया की श्यामल श्री देख कर चित्त में एक अनिर्वचनीय आनन्द उत्पन्न हुए बिना नहीं रहता । पास ही अतिविस्तृत यमुना की धारा कल कल शब्द करती हुई प्रवाहित हो रात्रि की निस्तब्धता का भङ्ग कर रही है । यमुना की जलहवा रह रह कर मन्दिर के भीतर प्रवेश कर मन्दिरस्थ सभी लोगों के शरीर को कँपा देती है । उस सुहावनी रात में मन्दिर के एक खम्भे की छाया में नरेन्द्र और हेमलता दोनों चुपचाप खड़े हैं ।

हेमलता ने गम्भीरतापूर्वक कहा—“नरेन्द्र, बहुत दिनों में आज तुमसे भेट हुई है । अब कौन जानता है कि फिर कब भेट होगी । आओ, हम तुम दोनों अपने मन की बात कह कर जी का बोझ हलका करें । बाल्यकाल में हम तुम्हारे साथ गङ्गा के किनारे बालू पर खेलती थीं । उपवन में घूमा करती थीं और भाँति भाँति के आशारूपी स्वप्न देखा करती थीं । अब तुमने सैनिक व्रत धारण

किया । हम दूसरे के साथ व्याही गईं । नरेन्द्र ! बाल्यकाल के उस दुःस्वप्न को अब एकदम भूल जाओ ।”

यह कह कर हेमलता चुप हो रही, फिर कुछ देर के बाद बोली—“यदि भगवान् दूसरी घटना घटाते तो हम लोगों का जीवन अन्य रूप से संगठित होता । साथ ही बाल्यकाल का स्वप्न भी सफल होता । किन्तु स्वप्न की निष्फलता में हम लोगों को भूल कर भी भाग्य की निन्दा न करनी चाहिए । जिस ईश्वर ने तुमको पराक्रम दिया है, यश दिया है, उनका गुण गाओ, वह अवश्य तुमको सुखी करेंगे । जिन्होंने इस संसार में मेरे रहने की जगह दी है, देवतुल्य पति दिया है, शैवलिनो के सदृश ननद दी है और धन-सम्पत्ति दी है । वे जगदीश्वर दया के समुद्र हैं । वही सब की सुध लेते हैं । उनको मैं बार बार प्रणाम करती हूँ ।”

हेमलता ने गले में वस्त्र लपेट हाथ जोड़ विश्वकर्ता को लक्ष्य करके प्रणाम किया । उसका निर्मल, पवित्र और शान्त भाव से भरा हुआ मुखमण्डल उसके हृदय की पवित्रता का परिचय दे रहा था ।

नरेन्द्र विस्मित होकर हेमलता के मुँह की ओर देखने लगे । उनके मुँह से एक भी शब्द न निकला । हेमलता फिर कहने लगी—“नरेन्द्र ! मैंने सुना है, तुम कई एक युद्धों में वीरता दिखला चुके हो । अनेक देश देख चुके हो और देश-देशान्तर में सुख्याति लाभ कर चुके हो । तुम धर्मशील हो, ईश्वर तुमको सुख से रक्खें । यदि तुम युद्ध से परिश्रान्त होकर विश्राम चाहो, यदि तुम्हें किसी तरह का कष्ट हो, या तुम्हारे ऊपर कोई विपद् आ पड़े तो तुम

बैखटके वीरनगर चले आना । तुम्हारे वहाँ आने से सभी लोग आह्लादित होंगे । मैं अपने स्वामी के कोमल हृदय को जानती हूँ । वे तुमको छोटे भाई के बराबर मानते हैं और तुम्हें प्यार करते हैं । जब तब वे तुम्हारी चर्चा करते हैं, तुम वीरनगर आओगे तो वे अत्यन्त प्रसन्न होंगे ।”

नरेन्द्र चुपचाप खड़े थे । हेम की बातें उनके कानों में सुधा-सिक्त अपूर्व संगीत ध्वनि की तरह आनन्द उपजा रही थीं । उनका हृदय उमग रहा था, और दोनों आँखें आनन्दाश्रु से पूर्ण थीं ।

हेम फिर कहने लगी—“तुम्हारे वहाँ जाने से शैवलिनी भी हृद से ज़्यादा प्रसन्न होगी । और मैं जब तक जीती रहूँगी छोटी बहन की तरह तुम्हारी सेवा करूँगी । भैया नरेन्द्र ! मैं तुमको जभी देखूँगी, प्रसन्न हूँगी ।”

हेमलता के मुँह से ऐसा सुमधुर स्नेहवाक्य सुन कर नरेन्द्र की आँखों में आँसू भर आये । बड़ी देर तक दोनों चुपचाप रहे ।

आखिर हेमलता ने फिर धीरे धीरे गम्भीर स्वर से कहा—
“नरेन्द्र ! एक बात और है । तुम अपने जी में कुछ और भाव न समझो । मेरे इस अपराध पर ध्यान न दो । बात यह है कि जब तुम वीरनगर छोड़ कर चलने लगे तो प्रणय का निदर्शनस्वरूप मुझे एक भूषण दिया था । उसके पहरने की मैं अब अधिकारिणी नहीं हूँ । नरेन्द्र ! वह अपनी चीज़ तुम लौटा लो ।

हेमलता ने अपनी कलाई पर के कपड़े को ज़रा खिसका लिया । नरेन्द्र ने देखा, “जो माधवी-कङ्कण नरेन्द्र ने दिया था वह अब उसके हाथ में है । लता सूख कर टुक टुक हो गई थी । हेमलता

ने उन सब खण्डों को एक सोने की तार में गूँथ कर साथ में ले लिया था । आज उसी को पहन कर आई है । ”

दोनों को पहले की बात याद हो आई । दोनों के हृदय को विषाद की छाया ने ढक लिया । दोनों बहुत देर तक चुप रहे । नरेन्द्र हेमलता के सुन्दर हाथ और उस माधवी-कङ्कण को निर्निमेष दृष्टि से देखने लगे । देखते देखते उनकी आँखों में आँसू भर आये । वे फिर देख न सके । न अपने आँसू को रोक ही सके । उनकी आँखों से आँसू टपक टपक कर हेमलता के हाथ और बाँह पर गिरने लगे । हेमलता पाषाणमूर्ति की भाँति निश्चलभाव से खड़ी रही । पीछे नरेन्द्र एक लम्बी साँस लेकर बोले—“हेम, तो क्या हमें हमेशा के लिए अपने हृदयमन्दिर से हटाना चाहती हो ? क्या अब एकदम हमें भूल जाओगे ? ”

हेमलता—“मैं इस जन्म में क्या कभी तुमको भूल सकती हूँ ? जब तक इस देह में प्राण रहेगा, तुमको सगे भाई की तरह समझूँगी । किन्तु यह कङ्कण तुमने और ही तरह के प्रणय का चिह्न-स्वरूप मुझको दिया था । नरेन्द्र, मैं अब उस प्रणय की अधिकारिणी नहीं हूँ । तुम बुरा मत मानो, न अपने मन में किसी तरह का खेद ही मानो । मैंने इन कई वर्षों से इस कङ्कण की आराधना की है । इसको अपने हृदय में लगा कर रक्खा है । कई बार इसे अपने माथे पर चढ़ा चुकी हूँ । अब इसका परित्याग करते जो कष्ट मुझे होता है वह मेरा ही जी जानता है, तुम शायद न जानोगे । इस कँगने को तुम मेरे हाथ से खोल कर

ले लो । उसमें अब मेरा अधिकार नहीं है । मैं इस कङ्कण को हाथ में रखने योग्य न रही । जिस माधवीकङ्कण को प्रण समझ किसी समय मैं फूले अङ्ग न समाती थी, उसे अब लिए मैं लाञ्छनामात्र समझती हूँ । मैं अपने पति को अविश्वासिनी होना नहीं चाहती ।”

नरेन्द्र इस पर कुछ न बोले । उन्होंने चुपचाप हेमलता हाथ से कङ्कण खेल कर ले लिया ।

तब हेमलता ठंडी साँस भर कर बोली—“नरेन्द्र, जाती हूँ । तुम धार्मिक हो, बाल्यावस्था से ही धर्म में निष्ठा है । उस धर्मनिष्ठा की कभी उपेक्षा न करो । कैसा ही का समय क्यों न आ पड़े अपने धर्म को न भूलो । भगवान् सदा सुखी रखेंगे । उन्होंने जिसके लिए जो व्यवस्था ठहराई है, हम लोगों को चाहिए कि उसी व्यवस्था के अनुसार कैसे कैसे सुन्दर फूल दो एक दिन तक अपनी अनुपम शोभा सुगन्ध चारों ओर फैला कर सूख जाते हैं । पक्षिगण प्रकाश कर आनन्द का गान गाते हैं । उनका यही काम है । नरेन्द्र, वीरपुरुष हो, दुश्मनों पर विजय प्राप्त करो, देश का मङ्गल यथासाध्य जाति की उन्नति करो और शरणागत दीन दुखि दया करो । जिस ईश्वर ने मुझको देवतुल्य स्वामी दिया है वह धर्म की रक्षा करेंगे । वह सहाय हों, जिसमें स्वामी की सेवा में कभी कोई भूल न हो, स्वामी के चरण कमलों में मेरी भक्ति अटल बनी रहे, जिसमें उनकी चिरपतिव्रता विश्वासिनी दासी रहूँ । “भाई नरेन्द्र ! बाल्यकाल में तुमने जो मुझे धर्म की

ने उन सब खण्डों को एक सोने की तार में गूँथ कर साथ में ले लिया था । आज उसी को पहन कर आई है ।”

दोनों को पहले की बात याद हो आई । दोनों के हृदय को विषाद की छाया ने ढक लिया । दोनों बहुत देर तक चुप रहे । नरेन्द्र हेमलता के सुन्दर हाथ और उस माधवी-कङ्कण को निरर्निमेष दृष्टि से देखने लगे । देखते देखते उनकी आँखों में आँसू भर आये । वे फिर देख न सके । न अपने आँसू को रोक ही सके । उनकी आँखों से आँसू टपक टपक कर हेमलता के हाथ और बांह पर गिरने लगे । हेमलता पाषाणमूर्ति की भाँति निश्चलभाव से खड़ी रही । पीछे नरेन्द्र एक लम्बी साँस लेकर बोले—“हेम, तो क्या हमें हमेशा के लिए अपने हृदयमन्दिर से हटाना चाहती हो ? क्या अब एकदम हमें भूल जाओगे ?”

हेमलता—“मैं इस जन्म में क्या कभी तुमको भूल सकती हूँ ? जब तक इस देह में प्राण रहेगा, तुमको सगे भाई की तरह समझूँगी । किन्तु यह कङ्कण तुमने और ही तरह के प्रणय का चिह्न-स्वरूप मुझको दिया था । नरेन्द्र, मैं अब उस प्रणय की अधिकारिणी नहीं हूँ । तुम बुरा मत मानो, न अपने मन में किसी तरह का खेद ही मानो । मैंने इन कई वर्षों से इस कङ्कण की आराधना की है । इसको अपने हृदय में लगा कर रक्खा है । कई बार इसे अपने माथे पर चढ़ा चुकी हूँ । अब इसका परित्याग करते जो कष्ट मुझे होता है वह मेरा ही जी जानता है, तुम शायद न जानोगे । इस कँगने को तुम मेरे हाथ से खोल कर

ले लो । उसमें अब मेरा अधिकार नहीं है । मैं इस कङ्कण को अपने हाथ में रखने योग्य न रही । जिस माधवीकङ्कण को प्रणयभूषण समझ किसी समय मैं फूले अङ्ग न समाती थी, उसे अब अपने लिए मैं लाञ्छनामात्र समझती हूँ । मैं अपने पति के निकट अविश्वासिनी होना नहीं चाहती ।”

नरेन्द्र इस पर कुछ न बोले । उन्होंने चुपचाप हेमलता के हाथ से कङ्कण खोल कर ले लिया ।

तब हेमलता ठंडी सांस भर कर बोली—“नरेन्द्र, मैं अब जाती हूँ । तुम धार्मिक हो, वाल्यावस्था से ही धर्म में तुम्हारी निष्ठा है । उस धर्मनिष्ठा की कभी उपेक्षा न करो । कैसा ही संकट का समय क्यों न आ पड़े अपने धर्म को न भूलो । भगवान् तुम्हें सदा सुखी रखेंगे । उन्होंने जिसके लिए जो व्यवस्था ठहरा रखी है, हम लोगों को चाहिए कि उसी व्यवस्था के अनुसार चले । कैसे कैसे सुन्दर फूल दो एक दिन तक अपनी अनुपम शोभा और सुगन्ध चारों ओर फैला कर सूख जाते हैं । पक्षिगण प्रकाश देख कर आनन्द का गान गाते हैं । उनका यही काम है । नरेन्द्र, तुम वीरपुरुष हो, दुश्मनों पर विजय प्राप्त करो, देश का मङ्गल करो; यथासाध्य जाति की उन्नति करो और शरणागत दीन दुखियों पर दया करो । जिस ईश्वर ने मुझको देवतुल्य स्वामी दिया है वही मेरे धर्म की रक्षा करेंगे । वह सहाय हों, जिसमें स्वामी की सेवा में मुझसे कभी कोई भूल न हो, स्वामी के चरण कमलों में मेरी भक्ति सदा अटल बनी रहे, जिसमें उनकी चिरपतिव्रता विश्वासिनी दासी होकर रहूँ । “भाई नरेन्द्र ! बाल्यकाल में तुमने जो मुझे धर्म की शिक्षा

दी थी, इस पवित्र देवमन्दिर में फिर एक बार उस धर्म की शिक्षा दो। आओ भाई, हम तुम दोनों प्रतिज्ञा करें, कभी धर्म-पथ का त्याग न करेंगे। मैं यावज्जीवन पातिव्रत पालन करूँगी, और तुम भी आज से पर-खी को बहन के बराबर समझोगे।” यह कह कर हेमलता गोलोकनाथ जी की मूर्ति के सम्मुख प्रणत हुई। नरेन्द्र ने भी चुपचाप दण्डवत् प्रणाम किया।

हेमलता उठ कर फिर बड़ी नम्रता से नरेन्द्र का हाथ पक कर बोली—“भाई नरेन्द्र, अब रात बहुत बीती। मुझे अब जानें की आज्ञा दो। मैं तुमको बड़े भाई के तुल्य समझ सदा याद करूँगी। तुम भी अपनी छोटी बहन को कभी न भूलना।”

हेमलता आँखों से आँसू पोछती हुई धीरे धीरे मन्दिर बाहर हुई। जितनी देर तक दृष्टि का अवरोध न हुआ, नरेन्द्र हेमलता की ओर देखते रहे। जब वह दृष्टि से बाहर हुई तब नरेन्द्र के विषाद की सीमा न रही। संसार में अभागों से भी अभागा लोग नरेन्द्र के उस रात का शोक और विषाद देख कर अपना दुःख भूल जाता और उनकी असह्य यन्त्रणा पर रो देता। भाग्य-हीन नरेन्द्र के हृदय का आशा-प्रदीप आज बुझ गया। उनके प्रणय का इतिहास आज समाप्त हुआ।

नरेन्द्र माधवी-कङ्कण को हृदय से लगा कर रात भर यमुना के किनारे बैठे रहे। हेमलता की बातें बार बार उनके हृदय में उदित होने लगीं—“उस माधवी-कङ्कण को खोल लो। उसके रखने का अब मेरा अधिकार नहीं। नरेन्द्र, मैं अब अपने पति के निकट अविश्वासिनी हो कर न रहूँगी” इत्यादि हेम की उक्ति मन्त्र की

भांति नरेन्द्र मन ही सज जपने लगे । तो अब उस प्रणयनिर्दर्शन
के रखने का अधिकार नरेन्द्र को ही क्या है ? प्रातः होते ही
नरेन्द्र ने उस हृदयसंलग्न माधवी-कङ्कण को यमुना-जल में छोड़
दिया । वह सूखा कङ्कण यमुना जल में तैरता हुआ थोड़ी देर में
अदृश्य हो गया ।

पैंतीसवाँ परिच्छेद ।

उपसंहार ।

मा धवी-कङ्कण का विसर्जन और इस उपन्यास का अन्त साथ ही हुआ । केवल उपन्यास के चरित्रनायक और नायिका के सम्बन्ध में दो एक बातें कहने शेष रह गई हैं ।

हम ऊपर कह आये हैं, शाह शुजा बङ्गदेश से फिर युद्ध करने के लिए आ रहे थे । जाड़े के मौसम में प्रयाग के समीप शुजा और औरङ्गजेब में घोर संग्राम हुआ । दो दिन तक दोनों दल में घमासान युद्ध जारी रहा । तीसरे दिन शुजा पराजित युद्धक्षेत्र से भागे । यशवन्तसिंह ने इस युद्ध में औरङ्गजेब के विरुद्ध आचरण करने की चेष्टा की थी, किन्तु उस दूरदर्शी तीक्ष्णबुद्धि युद्धकुशल औरङ्गजेब की कुछ विशेष हानि न कर सके । इस पराजित हो वे अपने देश को लौट गये ।

शुजा प्रयाग से पटना, पटने से मुङ्गेर, मुङ्गेर से राजमहल और वहाँ से गङ्गापार होकर तोण्डा भाग गये । औरङ्गजेब के पुत्र मुहम्मद और सेनापति अमीर जुम्ला उनके पीछे पीछे आ रहे थे । कहीं उनका गौरा जमने नहीं देते थे । तोण्डा में युवराज मुहम्मद ने शुजा की बेटी से व्याह करके शुजा का पक्ष अवलम्बित किया, किन्तु अमीर जुम्ला के निकट दोनों परास्त हुए । तिस

न्तर मुहम्मद पिता के कपटपत्र पर विश्वास कर के खो-
 हुत शुजा का पक्ष त्याग कर तोण्डा से चल दिया । भाग्यहीन
 भाग कर अराकान गये । वहाँ के राजा के साथ विरोध
 के कारण शुजा सेनासहित मारे गये । शुजा की लड़की से
 राजा ने व्याह किया । लोग कहते हैं, शुजा की
 सुन्दरी प्रधान बेगम प्यारी वानु ने मारे विषाद के आत्मघात
 लिया । जिस शाह शुजा ने बीस वर्ष तक बड़ी योग्यता के
 वङ्गदेश का शासन किया था, जो युद्ध में साहस, प्रजाओं
 दया और हिन्दुओं के साथ उदारता दिखला कर मशहूर हुए
 जिनकी राजधानी राजमहल का राजभवन दूसरा इन्द्रालय था,
 जहाँ दिन रात आनन्द की तरङ्ग उछलती रहती थी, लाखों
 जिनकी आज्ञा के वशवर्ती थे, मृत्यु के समय उनकी कत्र
 लिए डेढ़ हाथ धरती न मिली, वे अनाथ की भाँति जहाँ के
 पड़े रह गये । विदेश में जाकर शत्रु के हाथ से परिवारसहित
 के कलेवा हुए ।

दारा श्यामनगर या फतेहआबाद के युद्ध में हार कर सिन्धु
 की ओर भाग गये । औरङ्गजेब की कट्टर सेना दारा को वहाँ
 पकड़ कर दिल्ली ले आई । निर्दय, कठोरचित्त औरङ्गजेब ने बड़े
 ई का यथेष्ट अपमान करके पीछे मरवा डाला । कारागार के
 मुराद भी शीघ्र ही बादशाह की आज्ञा से क़त्ल किये गये ।
 नों भाइयों के हृदय के रक्त का टीका माथे से चढ़ा कर नृशंस
 औरङ्गजेब भारतवर्ष के राजसिंहासन पर बैठे ।

जिस दिन मथुरा में हेम से नरेन्द्र की भेट हुई थी, इसके

बाद नरेन्द्र एकदम लापता हो गये। वङ्गदेश में लौट आकर हेमलता ने नरेन्द्र को अनेक स्थानों में ढुँढ़वाया, महानुभाव रमेशचन्द्र ने देश देश में यह खबर भेज दी कि यदि नरेन्द्र लौट कर वीरनगर आये तो उनके पिता की ज़मींदारी का आधा हिस्सा उन्हें मिलेगा। किन्तु उस दिन के बाद फिर नरेन्द्र को किसी ने कहीं देखा नहीं।

हेमलता वीरनगर में रमेशचन्द्र के साथ सुख से समय बिताने लगी। मथुरा के देवमन्दिर में उसने जो प्रतिज्ञा की थी उसे अतः तरह निवाहा। धर्मपरायणा हेम तन मन से स्वामी की सेवा में लग पड़ी, उसके मन से और तरह की चिन्ता दूर हुई। वह पति-भक्ति के सिवा दूसरा धर्म न जानती थी। उसके हृदय में स्वामी ही एक आराध्य देव हो दिन रात निवास करने लगे। रमेशचन्द्र की सेवा के फलस्वरूप हेमलता के गर्भ से क्रमशः हेमन्तकुमारी और सरयूवाला नामक दो कन्यायें तथा प्रतापचन्द्र नाम का एक पुत्र—ये तीनों सन्तान पैदा हुए। बीस वर्ष पहले रमेशचन्द्र, नरेन्द्रनाथ और हेमलता, ये तीनों जिस तरह सन्ध्या समय गङ्गा के किनारे खेलते थे, हेमलता ने देखा, ठीक उसी तरह उनके कन्या बालक उस जगह खेल रहे हैं और उन बालकों की आनन्द-ध्वनि से गङ्गातटवर्ती उपवन प्रतिध्वनित हो रहा है। संसार की यही गति है। एक दल गया, दूसरा दल आया। कोई जगह कभी खाली नहीं रहती। धार्मिक माता-पिता के सन्तान को जैसा सच्चरित्र, सुशील और स्वरूपवान् होना चाहिए रमेश के सन्तानगण भी वैसे ही थे। रमेश के बालक और बालिकाओं का सुन्दर स्वरूप और स्वभाव दोनों प्रशंसनीय थे।

ब्याह होने के प्रायः दस वर्ष पीछे हेमलता एक दिन अपने बालकों को लेकर एक संन्यासी के दर्शन करने गई। वीरनगर से कई एक कोस दूर एक प्रसिद्ध सेमल का वृक्ष था। उसकी जड़ से तीन तरफ पतली दीवाल की तरह तीन पाट निकल आये थे। उस पुराने वृक्ष के वे पाट इतने ऊँचे हो गये थे और इतनी दूर में फैल गये थे कि जिनके देखने से बोध होता था जैसे उन पाटों का एक कपाटशून्य घर बन गया हो। उस अपूर्व घर में एक संन्यासी कई वर्षों से टिके थे। उस गाँव की स्त्रियाँ और बालक बालिका-गण स्नेहपूर्वक संन्यासी के भोजनार्थ प्रतिदिन दूध और फल मूल ला देते थे। उसी से उनकी जीवनयात्रा चलती थी। वे दिन भर परमेश्वर के ध्यान में लीन रहते थे। सायंकाल को वे उस गाँव के प्रत्येक गृहस्थ के घर जाते थे। शोकाकुलों को सान्त्वना देना, रोगियों की सेवा करना, दुर्बलों की सहायता करना और दीन दुखियों का कष्ट निवारण करना ही उनके जीवन का प्रधान कार्य था। आधी रात तक वे इन सब कामों को करके फिर उस पेड़ के नीचे पाटनिर्मित घर में लौट आते थे। वहाँ आकर वे घास पर सो रहते थे, क्या जाड़ा, क्या गरमी, क्या बरसात बारहों महीने उनके सोने का यही नियम था। उस अद्भुत तरुगृह और उस सच्चे संन्यासी के दर्शनार्थ दूर दूर से लोग आते थे।

हेमलता उस वृक्ष से कुछ दूर पर नाव से उतरी। वहाँ से वह अपने बाल-बच्चों को लिये धीरे धीरे उस पेड़ के पास आ पहुँची। संन्यासी की ओर लक्ष्य करके उसने हाथ जोड़ कर प्रणाम किया। पीछे अपने छोटे लड़के को गोद में लेकर खड़ी हो वह संन्यासी

Digitization by American Academy of Indic Studies, AAIS(USA)
 की ओर देखने लगी । हेमलता की टकटकी बंध गई । उस ओर
 से वह अपनी दृष्टि को दूसरी ओर न फेर सकी । चुपचाप चित्रवत्
 खड़ी हो संन्यासी का मुँह देखने लगी ।

संन्यासी भी स्थिर दृष्टि से हेमलता की ओर देख रहे थे ।
 उन्होंने अनुरक्त नेत्र से हेमलता को प्रणाम करते देखा । फिर वे
 सत्पुष्प नयनों से हेमलता के सुन्दर बालक और बालिकाओं की
 ओर देखने लगे । उन सबों को देखते देखते जान पड़ा जैसे
 संन्यासी का हृदय अनुराग से भर गया हो । साथ ही उनकी
 आँखों में आँसू भी दिखाई दिया । आखिर संन्यासी ने धीरे धीरे
 हेम के पास आकर उसके शिशु-सन्तानों के माथे पर हाथ रख
 कर आशीर्वाद दिया । पीछे हेमलता की ओर स्थिर दृष्टि से देख
 कर कहा—“मैं आशीर्वाद देता हूँ, तुम्हारे देवतुल्य स्वामी में
 तुम्हारी अचल भक्ति हो । तुम जन्म जन्म पतिव्रता होकर पति
 की विश्वासिनी बनो ।”

यह कह कर संन्यासी धीरे धीरे वहाँ से चले गये । इसके
 अनन्तर फिर कभी किसी ने उस पेड़ के तले संन्यासी को न देखा ।
 संन्यासी उस गाँव से कहाँ गये यह भी किसी ने नहीं जाना ।

॥ समाप्त ॥

SPS

891.433 J 24 M



6555

